प्रकाशकका वक्तव्य

हमारे यहांसे प्रकाशित होनेवाली 'उपन्यास तरंग-माला' मे
... प्रकाशित हो चुकी हैं। उपन्यास-प्रेमी
सचित्र सामा... है और विद्वत्समाजने भी
...चा नहीं होगा, कि इससे
...हुआ है। यही
...प्रकाशनकी

लेखक—

ठाकुर रामाशीष सिंह

प्रकाशक—

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी,

२०३, हरिसन रोड,

कलकत्ता।

प्रथम बार] १९८६ [मूल्य सजिल्द १॥)

मुद्रक—
किशोरीलाल केडिया,
"वणिक् प्रेस"
नं० १ सरकार लेन, कलकत्ता।

प्रकाशकका वक्तव्य
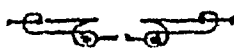
हमारे यहांसे प्रकाशित होनेवाली 'उपन्यास तरंग-माला' में अबतक उन्नीस पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं। उपन्यास-प्रेमी पाठकोंने उन्हें बड़े प्रेमसे अपनाया है और विद्वत्समाजने भी मुक्तकण्ठसे उनकी प्रशंसा की है। कहना नहीं होगा, कि इससे हमें यथेष्ट प्रोत्साहन और आत्म-सन्तोष प्राप्त हुआ है। यही कारण है, कि हम सदा नये-नये उपन्यासोंके प्रकाशनकी चेष्टामें रहते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'गर्विता' इसी मालाकी बीसवीं पुस्तक है। लेखकने इसमें सुन्दर सामाजिक चित्र खींचनेका प्रयत्न किया है। वे इस कार्यमें कहांतक सफल हुए हैं, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। इस बातका निर्णय पाठकगण स्वयं कर लेंगे। कुसंगतिमें पड़ जाने और दुर्व्यसनोंके सेवनसे, सुख-शान्तिमय गृहस्थी किस प्रकार अशान्तिपूर्ण बन जाती है, इसकी शिक्षा इस पुस्तकमें कूट-कूट कर भरी हुई है। कुसंगति और दुर्व्यसनोंके फन्देसे मनुष्यको सदा पूरी सावधानीके साथ बचते रहना चाहिये; अन्यथा संसारयात्राकी प्रधान सहायिका गृहस्थी बिलकुल मिट्टीमें मिल जाती है—यही बात उपन्यासके रूपमें इस पुस्तकमें बतायी गयी है। आशा है, पाठकोंका इसके द्वारा जहां यथेष्ट मनोरंजन होगा, वहां उन्हें पर्याप्त शिक्षा भी प्राप्त होगी।

—प्रकाशक।

साहित्य-सम्राट्

स्वर्गीय बंकिमचन्द्र चटर्जी-लिखित

कपालकुण्डला
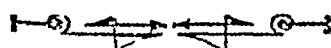
बङ्किम बाबू के उपन्यासोंके विषयमें कुछ कहना सूर्यको दीपक दिखानेके समान है। उनके उपन्यासोंमें इतिहास और उपन्यास दोनोंका ही आनन्द आता है। क्या घटना-वैचित्र्यकी दृष्टिसे और क्या मनोरञ्जनकी दृष्टिसे यह उपन्यास अपना सानी नहीं रखता। यही कारण है कि पचासों वर्ष पहलेकी लिखी होनेपर भी इस पुस्तकके कथानकको बायस्कोप कम्पनियाँ चित्र-रूपमें और थियेटर-कम्पनियां अभिनय करके दिखलाती हैं तथा मालामाल होती हैं। इसीसे समझा जा सकता है, कि यह उपन्यास कितना रोचक होगा। अनुवाद सरल और सुबोध भाषामे किया गया है। कई सुन्दर-सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं। फिर भी मूल्य केवल १) रु० रखा गया है।

पता—हिन्दी पुस्तक एजेन्सी,

२०३, हरिसन रोड, कलकत्ता।

गर्विता

पहला परिच्छेद

बरियारपुरके ओसकांत तिवारीका लड़का बिसेसर जब ऐण्ट्रेन्स फेल हो गया, तब वह भागकर कलकत्ते चला आया। उसके पिता तो पहले ही मर चुके थे, घरमें वृद्धा माता और स्त्री दुलारी थी। कलकत्ते आकर उसने पहले तो इधर-उधर आफिसों और महाजनी गद्दियोंमें नौकरीकी तलाश की, पर कहीं भी ठिकाना न लगा। परन्तु ईश्वरकी महिमा अपरम्पार है। अन्तमें एक दिन उसकी दयनीय दशापर तरस खाकर एक उदार सज्जनने उसे एक जगह गल्लेकी दलालीमें लगा दिया।

ईश्वरकी कृपासे उसकी दलाली खूब चल निकली। थोड़े ही दिनोंमें उसके पास हजारों रुपये जमा हो गये। लक्ष्मीकी कृपासे शहरकी तड़क-भड़कके सामने उसे अपने गांव बरियारपुरके प्रति घृणा होने लगी। वहांकी मैली-कुचैली गलियां, कांटे-कुशसे भरे खेत, असभ्य किसान, उनकी असभ्यतापूर्ण बातें एवं रहन-सहन बिसेसर-

की आंखोंमें वीभत्सतापूर्ण जंचने लगी। कैसा सुन्दर कलकत्ता शहर है! यहांके आदमी कैसे सभ्य हैं! कुलीसे लेकर लखपती गद्दीवाले तक बाबू बिसेसरप्रसाद कहते हैं और वहां! कोई कहता है बिसेसर, कोई कहता है बिस्सू महाराज, कोई कहता है ओ तिवारी; छिः छिः भला ऐसे जंगली आदमियोंके बीच भी कोई भलामानस रहता है?

बिसेसरने एक बढ़िया मकान किरायेपर लिया। उसके बाद अपनी वृद्धा माता और स्त्रीको कलकत्त ले आनेके लिये गया।

पर मांने बड़ा झमेला मचाया। वह किसी तरह कलकत्ते आनेके लिये राजी नहीं हुई। उसने कहा—बेटा, मेरे तो तीन पन बीत चुके, अब गङ्गाके किनारे रहनेकी इच्छा है,मरनेपर मेरे हाड़-चाम किसी तरह गंगामें पड़ जायंगे। इससे बढ़कर और सुखकी बात क्या हो सकती है? बेटा, हमारे चले जानेपर बाप दादेके मकान में सांझको चिराग नहीं जलेगा। मैं अपनी आंखोंसे यह नहीं देख सकती। तुम दोनों जाओ, सुखसे रहो, मुझ बूढ़ीको यहीं पड़ी रहने दो। जहां मेरे सास-ससुर रहते थे, जहां वे जीये-मरे, वहीं मुझे भी गलने दो।

बिसेसरने मांको बहुत समझाया-बुझाया। घरमें शामको चिराग न जलनेमें कोई दोष नहीं है। यह एक पुराना कुसंस्कार है। तू इसकी परवा क्यों कर रही है? पर लाख समझाने-बुझानेपर भी उसकी समझमें बिसेसरकी बात नहीं आयी। बुढ़ियाने लड़केका पागलपन देखकर कहा—हां रे बिसेसर, दो दिनका छोकरा, तू मुझे क्या सिखावेगा? क्या मैं भी तेरी तरह नास्तिक हूं?

अन्तमें बिसेसरको हार माननी पड़ी। उसने स्थिर किया कि मां रहना चाहती है तो रहे, दुलारीको साथ ले जाऊंगा।

इससे पहले तो बिसेसरको कुछ दुःख हुआ, पर अन्तमें वह दुःख आनन्दमें परिणत हो गया। सोचा, मांके सामने दुलारी हरदम लजायी-सी रहती है, कभी घूंघट ऊपर नहीं उठाती, संकोचके मारे दिल खोलकर बात तक नहीं करती। सदा मांके डरसे भीगी बिल्ली बनी रहती है। पर वहां कलकत्तेमें यह सब बात बिलकुल न रहेगी। दिल खोलकर बे-रोक-टोक हम दोनों प्रेमका नाटक खेलेंगे। यदि मैं दिनभर भी दुलारीको अपनी छातीसे लगाये रहूंगा, तो भी कोई कुछ कहने-सुननेवाला नहीं है। अहा! बड़ा आनन्द मिलेगा! बड़ी शांति मिलेगी! भगवान जो करते हैं वह अच्छेके लिये ही करते हैं। बिसेसरका रोम-रोम पुलकित हो उठा।

किन्तु बिसेसरने एक बार भी नहीं सोचा था कि दुलारी एक ही बातसे उसके हवाई महलको गिराकर धूलमें मिला देगी। दुलारी-ने सासको न जाते देखकर कहा—"मांजीको छोड़कर मैं नहीं जा सकती।"

दुलारीकी बात सुनकर बिसेसरको ऐसा जान पड़ा, मानो उसके सिरपर वज्र गिर पड़ा। उसने कहा, यह क्या? तुम नहीं जाओगी?

दुलारीने कहा—ना, मांजीको इस बुढ़ौतीमें अकेली छोड़कर जाऊंगी तो मुझे नरकमें भी जगह न मिलेगी।

बि०—मैं ऐसा बन्दोबस्त कर दूंगा जिसमें मांको कुछ भी कष्ट न हो। उसके लिये एक लौंडी रख जाऊंगी।

दु०—हजार लौंडियां रखने दो; पर जो कुछ मैं करूंगी उसका हजारवां हिस्सा भी कोई लौंडो नहीं कर सकेगी।

बिसेसरने तब दुलारीको बहुत तरह समझाया-बुझाया। कलकत्ते के महल जैसे मकानोंके सुखका प्रलोभन दिखाया; आरजू-मिन्नतें भी कीं, पर दुलारी जरा भी न डिगी। वह बारबार कहती रही, कि मैं मांजीको छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगी।

दुलारीके हठ और दुराग्रहको देखकर बिसेसरके हृदयका सोया हुआ अभिमान जाग उठा। उसने कहा—तो तुम मुझसे प्रेम नहीं करती ?

दुलारीने मुस्कराते हुए कहा—यदि इन पांच वर्षोंमें भी तुम इस बातको नहीं समझ सके तो मेरा मुंहसे कहना व्यर्थ है।

दुलारीके मुंहपर हंसी देखकर बिसेसरको बड़ा क्रोध आया—उसने कहा—अच्छा, तुम यहीं रहो, और मैं वहीं रहूंगा।

दुलारीने किञ्चित् भी विचलित न होकर कहा—खुशीसे।

बिसेसरने कहा—तो मैं दूसरा विवाह कर लूंगा।

दुलारीने हंसते हुए कहा—जान पड़ता है, तुम मुझे भय दिखा रहे हो ?

बि०—भय नहीं दिखाता हूं, सचमुच विवाह कर लूंगा।

दु०—कितने ?

बि०—कमसे कम एक। यदि विवाह न करूं तो आजसे मेरा नाम बिसेसर नहीं।

दुलारीने बिसेसरका मुंह बन्द करते हुए कहा—एक ही क्यों तुम दस विवाह करना, पर ऐसी कसम मत खाओ। छिः ! छिः !!

दूसरे दिन सवेरे उठकर बिसेसर कलकत्ते चला आया। आते समय उसने दुलारीसे भेंट तक न की।

सासने बहूको बुलाकर कहा—बेटी, क्या यह काम अच्छा हुआ?

दुलारीने कहा—तो कुछ बुरा भी नहीं हुआ।

सास—वह जन्मसे ही बड़ा हठी है।

दु०—तो मैं क्या कुछ कम हूं?

सास—किन्तु तुम्हारा जाना ही अच्छा था।

दु०—आपको अकेली छोड़कर मैं स्वर्ग भी नहीं जाना चाहती।

सास स्नेहसे बहूके माथेको हाथोंसे सुहलाने लगी। गद्गद् होकर वृद्धाने कहा—बेटी, मै यह बात जानती हूं। इसीलिये मुझे तुम्हारी बड़ी चिन्ता रहती है।

कुछ देर सोचनेके बाद वृद्धाने फिर कहा—जाने दो सास-ससुरके घरको। चलो, अन्तकालमें गंगाके किनारे चलकर रहूं। कल ही चली चलो।

अभिमान-भरे स्वरमें दुलारीने कहा, मांजी, मैं नहीं जाऊंगी। मैं तुम्हारे पांव छानकर यहीं पड़ रहूंगी। देखूं, तुम मुझे कैसे ले जाती हो?

वृद्धाने हंसकर कहा—जैसा हठी बेटा वैसी ही उसकी बहू।

इसके बाद एक दीर्घ निःश्वास लेकर वृद्धाने अपने मनमें कहा, हे भगवन्! मेरी लक्ष्मीको दुःख मत देना।

———०———

दूसरा परिच्छेद

तीन महीनेके बाद रघुनाथसिंहने कलकत्तेसे आकर यह संवाद दिया कि पिछले फागुनके महीनेमें बिसेसरने एक विवाह कर लिया है। लड़की सयानी है, देखनेमें भी बड़ी सुन्दरी है।

यह सुनकर बिसेसरकी मां रोने लगी। यह बात नहीं थी कि दुलारीको रुलाई नहीं आयी, पर वह अपने आंसुओंको आंखोंमें ही रोककर सासको सान्त्वना देने लगी, बोली—उनकी जितनी इच्छा हो उतनी स्त्रियोंसे विवाह कर लें, इससे क्या बनता-बिगड़ता है?

सिर पीटते हुए वृद्धाने कहा—अरी, अभागिन! तेरा ही तो सर्वनाश हो गया।

दुलारीने कहा—मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ा है; मां! यदि मैं अपना सर्वनाश होता देखती तो तुमको छोड़कर चली जाती।

वृद्धा—पर तुम्हारे न जानेसे देखती हो कि क्या हो गया।

दु०—कुछ तो नहीं हुआ।

वृद्धाने आंखें फाड़-फाड़कर बहूके उद्वेगहीन मुंहकी ओर देखकर कहा—तुम कैसी स्त्री हो?

दुलारीने हंसकर सासकी चरण-धूलि अपने माथेपर चढ़ायी और कहा—ठीक, मांकी तरह! किन्तु यदि आप ही रोने-पीटने लगेंगी तो मैं सिर पटककर मर जाऊंगी।

वृद्धाने एक लम्बी सांस भरकर कहा—हाय ! हाय !! ऐसा कपूत मेरे पेटसे जन्मा !

बिसेसर दस रुपये प्रति मास खर्चके लिये भेजता था। विवाह हो जानेपर भी यथासमय दस-दस रुपयेका मनीआर्डर आया ; किन्तु इस बार दुलारीने रुपया नहीं लिया। मनीआर्डर लौट गया। वृद्धाने कहा, रुपया लौटा दिया है, अच्छा किया है। उसका पैसा लेना पाप है। यदि तुम रुपया ले लेतीं, तो मैं तुम्हारे हाथका छुआ पानी भी नहीं पीती।

दुलारीने कहा—क्या आपने मुझे किसी छोटे घरकी बेटी समझ रखा है ?

वृद्धाने हंसकर कहा—तो तुम्हारा बाप छदाम चौबे तो कोई बड़ा आदमी नहीं था।

दुलारीने हंसकर कहा—मैं आपकी बात नहीं कह रही हूं।

वृद्धा—कहो न ? मैं तो सच कहती हूं मेरे बाप बड़े आदमी नहीं थे।

दुलारी—किन्तु आपके गरीब पिताने आपके हृदयमें एक ऐसी वस्तु दी है जो रुपये देनेसे भी नहीं मिल सकती। एक राज्य देनेपर भी वह खरीदी नहीं जा सकती है।

सासने बहूको अपने दोनों हाथोंसे छातीसे लगा लिया। उसकी आंखोंसे स्नेहके आंसुकी धारा बहने लगी।

दोनोंके दिन बड़े कष्टसे बीतने लगे। सात-आठ बीघे मौरूसी जमीन थी। उससे सालभर तक दोनों प्राणियोंका गुजर-बसर चल

जाता। इसके सिवा दुलारी फुर्सत मिलनेपर चरखा कातती, कपड़ों पर बेल-बूटे काढ़ती। घरमें एक गाय थी। उसका जो दूध होता, उसमें कुछ बुढ़ियाके खाने भर रखकर बाकी बेच देती। बागमें तरह तरहकी साग-सब्जी लगा रखी थी। इससे तरकारी नहीं खरीदनी पड़ती थी। इसी प्रकार दोनों सास-बहू अपना दिन काट लेती थीं।

बहूके इस अविश्रान्त परिश्रमको देखकर सासको बड़ा दुःख होता था। किन्तु दुलारीको कुछ भी कष्ट नहीं होता था; वरन वह इसमें बड़े गर्वके साथ एक आत्मानन्दका अनुभव करती थी। वह सदा ईश्वरसे प्रार्थना करती, भगवन् ! मेरा सिर किसी तरह नीचा न हो। किन्तु भगवानने उसकी क्षुद्र प्रार्थना भी नहीं सुनी।

उस साल चैतके महीनेमें बड़े जोरकी वर्षा हुई, ओले भी पड़े। रबीकी सारी फसल मारी गयी। किसीके घर एक मुट्ठी भी अनाज नहीं आया, देश-भरमें हाहाकार मच गया।

दुलारीके पास जो दो-चार गहने थे, वह सब बिक गये। घरके बरतन-भांड़े भी बिकने लगे, तो भी दिन कटना मुश्किल हो गया। दुलारी हताश हो गयी।

दुलारीको अपने लिये उतनी चिन्ता न थी जितनी बुढ़िया सासके लिये। वह किस तरह सासको उपवास करते देखेगी। भगवन्! मैं बिना खाये मरनेको तैयार हूं, पर मांके लिये कुछ उपाय कर दो दयानिधे!

किन्तु दयानिधिने तनिक भी दया नहीं दिखलायी। दुलारी अत्यन्त व्याकुल हो उठी। हाय! अब उसका सारा गर्व-अभिमान जाता रहेगा। उसे अब दूसरोंके सामने हाथ फैलाना पड़ेगा। यह

बात सोचती हुई दुलारीके सारे शरीरमें बिजली-सी दौड़ गयी। किन्तु दूसरोंके सामने हाथ फैलानेके सिवा और कोई उपाय भी नहीं।

इस दुर्दिनमें उसे एक बार अपने स्वामीकी याद आयी। किन्तु याद आते ही अभिमान और लज्जासे उसका हृदय क्षुब्ध एवं संकुचित हो गया। उसे अपनेपर बड़ा क्रोध आया। एक बार जिसका दान उसने गर्वके साथ लौटा दिया है, क्या फिर उस लौटाये हुए दानको वह मांगने जाय? प्राण चले जायं पर वह ऐसा कभी नहीं कर सकती।

किन्तु इस समय तो उसे केवल अपने ही प्राणोंकी चिन्ता नहीं है। उसके साथ उसकी बुढ़िया सास भी तो मर रही है। अपने लिये न सही, आखिर सासके लिये तो उसे दूसरेंके सामने हाथ फैलाना ही पड़ेगा। दुलारीके सामने एक विकट समस्या उपस्थित थी। उसने बहुत सोच-विचारकर स्थिर किया कि जब भीख मांगना ही है तो दूसरोंके सामने हाथ न फैलाकर उनकी ही शरणमें जाना ठीक है।

यह निश्चय करके दुलारी अपने पतिको पत्र लिखने बैठी। अपने स्वामीसे ही उसने कुछ-कुछ लिखना-पढ़ना सीखा था। पर स्वामीके पास यह पहली ही बार पत्र लिख रही थी। लिखनेका उसे अभ्यास नहीं था, बड़े कष्टसे मोटे-मोटे अक्षरोंमें किसी तरह टेढ़ा-मेढ़ा लिखकर उसने पत्रको समाप्त किया। उसने लिखा—

"प्राणेश्वर!

प्रायः दो बरसके बाद आज मैं तुमसे कुछ सहायता मांग रही

हूं। शायद—शायद क्यों निश्चय—अपने लिये मैं ऐसा नहीं करती। किन्तु आंखोंके सामने माताजीको भूखों मरते किस तरह देखूं ? हमारे दिन बड़े कष्टसे बीत रहे हैं। घरमें एक फूटा बरतन भी नहीं है, जिसे बेचकर एक सांझका भी काम चले। खाली घर बाकी बचा है। अब तुम्हें जो उचित जंचे, वही करो।

तुम्हारी—

दुलारी।"

पत्र भेजे एक महीना हो गया, पर पत्रका न तो उत्तर आया और न कुछ सहायता ही आयी। लज्जा और घृणाके मारे दुलारीको मरनेकी इच्छा होने लगी। सासने कहा—अब क्या होगा, दुलारी ?

दुलारी इसका क्या उत्तर दे ? वह चुपचाप बैठी रही। वृद्धाने फिर कहा—अब कोई दूसरा उपाय नहीं।

दुलारीने कहा—मैया ! आपको बड़ा कष्ट हो रहा है।

वृद्धाने कहा—मेरा कष्ट ? मेरा कष्ट कौन समझेगा, दुलारी ! मेरा बेटा यदि आज लायक होता तो क्या मुझे भूखों रहना पड़ता। तुम्हारी जैसी लक्ष्मी दिन-रात दुःखके मारे गली जा रही है। मेरा कष्ट कौन देखेगा, कौन सुनेगा ?

यह कहकर वृद्धा रोने लगी। दुलारीकी छाती फटी जाती थी। उसने कुछ इधर-उधर करके कहा—न हो, चलो कलकत्ते चलें।

वृद्धाने आश्चर्यसे पूछा—क्या तुम कलकत्ता चलनेके लिये राजी हो ?

दुलारीने कहा—आप कहें तो जाऊं।

वृद्धाको दुलारीके मनका भाव समझनेमें देर न लगी। तो भी उसने अपने मनका भाव छिपाकर कहा—हां, मैं कहती हूं, तुम जाओ।

दुलारीने मुस्कुराते हुए वृद्धाकी ओर देखा। सासके पैरोंपर हाथ रखकर उसने कहा—सच। मेरी देह छूकर आप कहें। वृद्धाने अपना पांव खींचकर क्रोधसे कहा—हट अभागिन! अभागिनकी बेटी आप भी मरेगी और मुझे भी मार डालेगी।

दुलारी उठकर हंसती हुई वहांसे चली गयी। वृद्धा तुलसी-चबूतरेको माथा टेककर कहने लगी—हे प्रभो! इस बुढ़ौतीमें मेरे पांवोंमें यह बेड़ी क्यों लगा दी? क्या मुझे मरने देनेकी भी तुम्हारी इच्छा नहीं है?

दिन चले जाने लगे। कभी आध पेट, कभी भर पेट खाकर, और कभी एकदम निराहार रह जाना पड़ता। कठिन परिश्रम करके भी यदि दुलारी वृद्धाको आधा पेट खिला पाती तो अपनेको कृतार्थ समझती—भगवानको धन्यवाद देती।

घोर कलिकालमें भी सासके प्रति इस कठिन आत्म-त्याग एवं श्रद्धा-भक्तिको देखकर टोलेकी स्त्रियां दुलारीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करती थीं। यदुकी दादीने कहा—अहा! साक्षात् लक्ष्मीका रूप है।

किन्तु यह लक्ष्मीकी बात बहुतोंको न सुहायी। उनमेंसे चम्पा सबसे प्रधान थी। उसने यदुकी दादीके कथनका प्रतिवाद करते हुए शेषमें कहा—अहा! सचमुच लक्ष्मीका रूप है! जिसको पति फटी आंख भी नहीं देखता, अपना दूसरा विवाह कर लिया, वही चली सती-सावित्री बनने।

यदुकी दादीने बिगड़कर कहा—चम्पा! ऐसी बात न कह! तेरी जीभ गिर जायगी।

चम्पाने नाक फुलाकर कहा—सच बात कहनेसे जीभ गिरेगी तो गिर जाय! पर मैं किसीकी मुंह-देखी बात नहीं कर सकती। चम्पा कुछ ऐसी-वैसी नहीं है।

साथ-ही-साथ वह यदुकी दादीके सामने अपना दाहिना हाथ ले जाकर चमकानेसे भी बाज न आयी।

तीसरा परिच्छेद

—:o:—

"मौसी, कहां हो ?"

दुलारीने देखा, कि बाल संवारे, हाथमें छड़ी लिये, रेशमी कुरता पहने, पावों में पम्पशूवाले एक नौजवान आंगनमें खड़ा है। वृद्धा घरके भीतर थी। बाहर आकर उसने पूछा—कौन है ?

"मौसी ! तुम मुझे नहीं पहचानती, मैं हूं हीरालाल।

व्यग्रभावसे वृद्धाने कहा—हीरा ! आओ बेटा, आओ। आंखें पथरा गयी हैं, सूझता कम है। दुलारी, हीराके बैठनेके लिये एक पीढ़ा दो। तुम कब आये, बेटा।

दुलारी लम्बा-सा घूंघट काढ़ एक पीढ़ा रखकर घरमें चली गयी। हीरालाल उसकी ओर एक कटाक्षपात करते हुए पीढ़े पर बैठ गया। कहा—मुझे आये तीन दिन हुए। कामके झंझटके मारे तुम्हारे पास न आ सका। इसीलिये मैंने सोचा कि आज दोपहरको न सोकर चलो मौसीको देख आवे।

प्रफुल्लित हो वृद्धाने कहा—जरूर आना चाहिये बेटा। अहा ! आज जो मेरी बहिन होती ! खूब राजी-खुशीसे रहे न ?

अपना कुशल-समाचार बतलाकर हंसते हुए हीरालालने कहा—सुना है। बिसेसर भाईने एक दूसरा विवाह कर लिया है।

एक लम्बी आह भर कर वृद्धाने कहा—उसकी बात मत पूछो बेटा ! वह मेरा बेटा नहीं है, शत्रु है।

हीरालालने बड़े कौतूहलसे पूछा—बात क्या है, मौसी ?

उसके बाद वृद्धाने सारी बात आद्योपान्त कह सुनायी। जो-जो हुआ था एक-एक करके सब सुना डाला, कुछ बाकी नहीं छोड़ा। एक बाहरके आदमीसे घरकी बुरी-भली कहते देख दुलारीको अपनी सासपर बड़ा क्रोध आया। उससे अधिक क्रोध उस आगन्तुकपर हुआ जो पूछ-पूछकर बड़े आग्रहसे दूसरेके घरकी बातें जान रहा है। उसकी इच्छा हुई कि आकर सासका मुंह बन्द कर दे, पर क्या करे, बाहर हीरालाल बैठा है।

अपना वक्तव्य समाप्त करते हुए वृद्धाने कहा—यह सब मेरे दुर्भाग्यका फल है। मुझ अभागिनके लिये मौत भी नहीं आती। बहू, हीरालालके लिये कुछ जलपान ले आओ।

दुलारीने साड़ीसे अपना सारा शरीर सिरसे पैरतक ढककर एक कटोरेमें कुछ मिठाई और गिलासमें जल लाकर सासके पास रख दिया और फिर धीरेसे चली गयी।

हीरालालने जलपान शेष करनेके बाद पाकेटसे एक सिगरेट निकालकर जलाया और मुंहसे धुआं फेकते हुए कहा—छिः, छिः, बिसेसर भाईने ऐसा खोटा काम कर डाला ! ऐसी सुन्दरी स्त्रीको—

हीरालालने एक बार उस घरकी ओर अपना तीव्र कटाक्षपात किया, पर उस ओरसे कृतज्ञतापूर्ण दृष्टिका सन्धान न पाकर हताश हो, उसने मुंह फेर लिया। उसने सिगरेटकी राखको झाड़ते हुए कहा—इस बार कलकत्ते जाकर बिसेसर भाईको ऐसी कड़ी कड़ी सुनाऊंगा, कि वह भी समझेंगे कि उनका काम कितना अन्यायपूर्ण हुआ है।

उसके बाद दो-चार और बातें कहकर हीरालाल चला गया और फिर भी आनेके लिये आशा दे गया।

हीरालालके चले जानेपर दुलारीने पूछा—यह कौन आदमी था, मांजी ?"

वृद्धाने कहा—तुम उसको नहीं पहचानती ? तुम पहचानोगी कैसे ? वह तो यहां रहता नहीं। वह ब्रह्मदत्त मिश्रका लड़का है। उसकी मां मेरी सहेली थी। क्या यह आजकी बात है, उस समय बिसेसर तीन बरसका बच्चा था। हीरालालकी मांके साथ मेरी खूब पटती थी, वह मेरे घर आती—मैं उसके घर जाती। उसके मर जानेपर अब उसके घरसे मेरा नाता एक तरहसे टूट ही गया है।

वृद्धाने हीरालालका जो परिचय दिया, उससे अधिक हम उसका परिचय देना चाहते हैं।

हीरालालके पिता पं० ब्रह्मदत्तमिश्र एक बड़े विद्वान् पण्डित थे, पर वे शास्त्र-व्यवसायी न थे। उन्होंने कभी किसी बरात या सभामें दुरूह तर्क-जालसे किसी पण्डितको पराजित कर अपनी विजय-दुन्दुभि नहीं बजायी। यदि कोई जिज्ञासु पण्डित उनसे शास्त्र विषयक प्रश्न करता तो वे उसकी उचित मीमांसा कर देते। किन्तु यदि प्रश्नकर्त्ता व्यर्थ तर्क करने लगता तो वे उससे विनयपूर्वक अपनी हार मान लेते थे। चार-पांच विद्यार्थियोंको अपने यहां शास्त्र पढ़ाते और उन्हें अन्नदान भी देते पर वे स्वयं किसीका दिया हुआ दान ग्रहण नहीं करते थे। आठ-दस बीघे माफी जमीन थी। उसीकी आयसे शास्त्र-पुराणोंकी आलोचनामें अपना शान्तिमय जीवन बिताते थे। वे

किसीसे मिलते-जुलते नहीं थे। किसी प्रकारको पञ्च-पञ्चायतमें भी भाग नहीं लेते थे।

गांवके आदमी भी उनसे बहुत नहीं मिलते थे। उनकी असामाजिक प्रकृतिसे गांववालोंकी सामाजिक प्रकृति ठीक नहीं मिलती थी। यदि कोई उनसे व्यवस्था पूछने जाता तो उसे शास्त्रके अनुसार विधान बतला देते थे। वह विधान चाहे कठिन होता चाहे कोमल, उसकी वह कुछ परवा नहीं करते थे। वह किसीका मुंह देखकर चिकनी-चुपड़ी बातें नहीं कहते। इससे यदि किसीके मनोनुकूल व्यवस्था न मिलती तो वह उनसे असन्तुष्ट हो जाता। अन्तमें लोगोंने उन्हें पण्डित-मूर्खकी उपाधि दे उनसे कुछ पूछना ही छोड़ दिया।

इन्हीं पंडित-मूर्खजीके दो लड़के थे। बड़े लड़केका नाम था हीरालाल और छोटेका रामकृपाल। ब्रह्मदत्तमिश्रके छोटे भाई रामदत्तमिश्र कलकत्तेमें कहीं नौकरी करते थे। हीरालाल उपनयन होनेके बाद अपने चाचाके यहां कलकत्ते चला आया। हाई स्कूलमें अङ्गरेजी पढ़ने कलकत्ते आनेपर उसके देहाती रहन-सहन बिलकुल बदल गये। उसने फ्रेंच-कट हजामत बनवायी, शिखाको ले जाकर गंगामें बहा दिया, प्रातःकाल कुशासन, पंचपात्र और सन्ध्योपासनके स्थानमें चायके प्यालेकी उपासना करने लगा। उसके बाद क्रमशः सिगरेटके बक्सने भी उसकी जेबमें आश्रय ग्रहण किया।

हीरालालकी प्रतिभा असाधारण थी। सेकेंड क्लासमें ही उसने शेक्सपीयर आदि अङ्गरेजीके कवि और दार्शनिक ग्रन्थोंका सार मर्म हृदयंगम कर लिया। क्रमशः हिन्दूधर्मपरसे उसकी श्रद्धा जाती

रहो। कभी वह आर्य्यसमाज-मन्दिरमें जाता, कभी ब्रह्मसमाजका सदस्य बनता, पर वह किसी विशेष सम्प्रदायका पक्षपाती न था।

छुट्टियोंमें हीरालाल कभी-कभी अपने गांव बरियारपुर भी जाता। उसके आते ही गांवमें एक हलचलसी मच जाती। उसके रंग-ढंग, उसकी बातचीत सुनकर लोग दंग रह जाते। धर्मनिष्ठ पिता धर्मभ्रष्ट पुत्रके भविष्यको सोचकर अत्यन्त चिन्तित होते।

हीरालाल कहता—स्त्रियोंको स्वाधीनता दो, विधवा-विवाहका प्रचार करो, जात-पांतका बखेड़ा दूर कर दो। ब्राह्मण और शूद्रमें कोई भेद नहीं है। सभी उस अचिन्त्य अव्यक्त परब्रह्मकी सन्तान हैं। सभी स्त्री-पुरुष भाई-बहिनके समान हैं।

बस, इस एक ही बातसे बड़ी हलचल मच जाती। बरियारपुर-के अशिक्षित किसान नहीं समझ सकते थे, कि किस प्रकार सभी स्त्रिया और सभी पुरुष भाई-बहिनके समान हैं। एक दिन पञ्च-कलिया ग्वालिनको 'प्रियभगिनि' कहकर हीरालालने उसका हाथ पकड़ लिया। फिर क्या था, पञ्चकलियाने ऐसी फटकार बतायी कि उसके होश हवा हो गये।

इसी प्रकार कुछ दिनोंतक गांवमें ऊधम मचाकर हीरालाल फिर कलकत्ते चला आता।

इस बार आकर गांवमें वह अधिक विप्लवकी सृष्टि न कर सका। बहुत दिनोंके बाद इस बार अपनी मौसीका विस्मृतप्राय स्नेह इस वेगसे जाग उठा, कि वह दिनका अधिकाश समय बिसेसर-के ही घर बिताने लगा। वहां जाकर दुलारीके दुःखसे द्रवित होकर

उसके प्रति सहानुभूति दिखलाता। सवेरेसे शामतक दुलारीके गुणगान और त्रिसेसरके कार्यकी तीव्र आलोचना कर वह दुखिया दुलारीकी अनुराग-भरी दृष्टि आकर्षण करनेकी चेष्टा करता। परन्तु उसकी इस कुप्रवृत्तिसे दुलारीका मन क्रमशः विरक्त हो उठा। जबतक हीरालाल उसके घर रहता तबतक उसे चोरकी नाईं घरके कोनेमे पड़ा रहना पड़ता था। इससे उसे कष्ट ही नहीं होता, घरका सारा काम-काज भी रुक जाता। इसके सिवा एक अनजान नवजवानकी यह हरकत उसे अच्छी नहीं लगती थी। एक दिन उसने अपने मनकी बात साससे कही। सासने उसके जवाबमें कहा—एक आदमी जब घरमें आता है, तब कैसे कहा जाये कि तुम यहां मत आया करो। दो चार दिनमें तो वह कलकत्ते चला ही जायगा।

जिस बरियारपुरकी आबहवाको अस्वास्थ्यकर बताकर हीरालाल वहां एक सप्ताह भी नहीं ठहर सकता था, इस बार पूरे दो हफ्ते बीत जानेपर भी उसे वहांसे जानेकी इच्छा न हुई, वरन् कुछ दिन और भी ठहरनेकी सम्भावना देखी गयी। किसी-किसीसे उसने कहा—कलकत्तेकी बंधी हवामें पड़े रहनेसे तबीयत एकदम ऊब जाती है, देहातकी खुली हवाका यह आनन्द छोड़कर जानेका जी नहीं चाहता।

इधर दुलारीके लिये हीरालालका आचरण अत्यन्त असह्य हो गया। एक दिन उसने स्थिर किया कि मैं ही साफ-साफ कह दूंगी कि मेरे घर मत आया करो। इसमें डरनेकी क्या बात है? दृढ़ संकल्प करनेपर भी दुलारी उससे कुछ न कह सकी।

टोले-महल्लेके लोगोंमें दुलारीके सम्बन्धमें कहीं-कहीं काना-फूसी होने लग गयी। उसके पड़ोसके कितने ही पुरुष और स्त्रियां, जो दूसरोंके ही शुभाशुभकी चिन्तामें अपना दिन काटती हैं, एक विकट समस्याकी उलझनमें पड़ गयी थीं। वह विकट समस्या यही थी कि जिसका पति सालमें इतना धन कमाये, वह दुःखसे अपना जीवन क्यों बिताये? और पति भी ऐसी सुन्दरी स्त्रीको छोड़कर दूसरा विवाह क्यों करे? हो न हो, इसका कोई-न-कोई कारण अवश्य है। किन्तु किसी बुद्धिमान पुरुष या स्त्रीने उस कारणका आविष्कार करनेका साहस नहीं किया।

इसी समय हीरालालको बाल संवारे, सिगरेट पीते, छड़ी घुमाते हुए बिसेसरके घर जाते देखकर कितनोंको ही इस समस्याका एक समाधान दिखाई दिया। पर किसी-किसीने कहा—ना, ना, क्या ऐसा भी कभी हो सकता है?

—o—

चौथा परिच्छेद
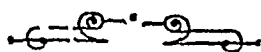
उस दिन जिस समय हीरालाल मौसीको पुकारते हुए उसके घरमें घुसा, उस समय दुलारी दृढ़प्रतिज्ञ हो चौकठपर बैठी जनेऊ कात रही थी। उसकी सास यदुकी मांको देखने गयी थी। वह कई दिनोंसे खाटपर पड़ी थी। पहले दिन जब हीरालाल मौसीकी इच्छा न रहते हुए भी दस रुपयेका एक नोट उसके हाथमें दे गया, उसी समय-से दुलारीकी सहिष्णुता सीमा पार कर गयी थी। अपमानसे उसका हृदय क्षुब्ध हो उठा था, क्रोधके मारे जल-भुन रही थी। इसीलिये सासकी अनुपस्थितिमें भी हीरालालको देखकर वह उठकर भागी नहीं, बदनके कपड़े संभालकर चुपचाप वहीं बैठी रही।

हीरालालने खड़ा होकर पहले इधर-उधर देखा, फिर पूछा—मौसी कहां है, क्या कहीं बाहर गयी है?

दुलारीने कुछ जवाब नहीं दिया। तब हीरालालने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहा—बहू, क्या दोपहरको एक अतिथि ब्राह्मणको बैठनेके लिये भी नहीं कहती?

दुलारी वहांसे उठी नहीं, जरा भी हिली-डुली नहीं। हीरालाल चौखटपर एक किनारे बैठ गया। दुलारी धीरे-धीरे उठकर घरके भीतर चली गयी।

हीरालालको बहुत बुरा लगा। उसने मुंह फुलाकर कहा—मुझसे

दुलारी,—"किसी स्त्रीके घरमे इस तरह बेधड़क आनेमें आपको लज्जा आनी चाहिये।" [पृष्ठ—२१]

इतना डरती क्यों हो ? क्या मैं बाघ हूं या भालू कि तुम्हें देखने ही खा जाऊंगा ?

दुलारीने मनमें कहा—उससे बढ़कर ।

अपनी एक भी बातका जवाब न पाकर हीरालाल हतोत्साह हो गया । वह कुछ गुनगुनाते हुए तालपर अपने पांवोंको हिलाने लगा । थोड़ी देर बाद गुनगुनाना छोड़कर उसने कहा—बहू, शायद विसेसर तुम्हें प्यार नहीं करता ।

भीतरसे चूड़ियोंकी खनखनाहटकी आवाज आयी । सुनते ही हीरालालका चेहरा प्रफुल्लित हो उठा । उसने कहा—हीरा पहचाननेके लिये आंखें चाहिये । जौहरी ही जवाहरको पहचानता है ।

दुलारी अब अधिक नहीं सह सकी । उसने गम्भीर स्वरमें कहा—आप यहां क्यों आते हैं ?

हीरालाल इसका सीधा उत्तर देने जा रहा था कि तुम्हें देखनेके लिये, पर यह सोचकर कि ऐसा कहना ठीक न होगा, कहा—क्यों क्या मुझे तुम्हारे घर नहीं आना चाहिये ?

दुलारीने कहा—नहीं, किसी स्त्रीके घरमें इस तरह बेधड़क आनेमें आपको लज्जा आनी चाहिये ।

हीरालालने एक कृत्रिम दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—बहू, क्या तुम मुझे इतना नीच समझती हो, क्या मैं इतना अपवित्र हूं ?

"हां, पूरे अपवित्र ।"

'किन्तु तुम नहीं जानती हो, मैं तुम्हारे दुःखसे कितना दुखित हूं'।

"मुझे दुःख नहीं है । अब आप फिर मेरे घर मत आइयेगा ।"

"जब तुम मना कर रही हो, तो न आऊंगा, पर तुम इस बातका भी ख्याल करो कि मैं तुम्हारी भलाई चाहनेवाला हूं।"

"बिलकुल झूठ।"

यह कहकर दुलारीने घरके भीतरसे नोटको बढ़ाकर उसके सामने फेंक दिया।

हीरालालने कहा—यह क्या ?

"आपका नोट"

"इसे तो मैंने तुम्हें दे दिया था।"

"मुझे जरूरत नहीं। जो आपका रुपया चाहे उसे देकर कृतार्थ कीजियेगा।"

घरकी ओर एक कटाक्ष फेंकते हुए हंसकर हीरालालने कहा—वहू! रंज न हो, इस वक्त हाथमें वेशी रुपये नहीं हैं, अभी इतनेसे ही काम चलाओ, फिर यदि जरूरत हो तो —

दुलारीने बिगड़कर कहा—चले जाओ यहांसे।

दुलारी घरके बाहर निकल आयी और आकर हीरालालके सामने खड़ी हो गयी। उसके सिरपरसे आंचल हट गया था, मुंह लाल हो गया था, आंखोंसे मानो चिनगारियां निकल रही थीं। उंगली उठाकर उसने वज्र-गम्भीर स्वरमें कहा—चले जाओ।

हीरालाल अपने प्यासे नेत्रोंसे दुलारीके क्रोधसे लाल मुखका सौन्दर्य पान कर रहा था। दुलारीने और भी गम्भीर स्वरमें कहा, "यदि तुम्हें लाज हो, अपमानका डर हो तो अभी उठकर चले जाओ।"

और कोई चारा न देखकर हीरालाल छड़ी लेकर उठ खड़ा

हुआ और दुलारीकी ओर देखकर मन्द मन्द मुस्कराते हुए चला गया।

इसी समय चम्पाने बाहरसे पुकारा—अरे बहिन, कहां हो ? पर जो दृश्य अपनी आंखोंसे देखा उससे वह आगे पांव न बढ़ा सकी। लाजसे जीभको काटती हुई पीछे हटकर वह जल्दीसे भाग गयी। निर्लज्ज हीरालाल छड़ी घुमाते और मन्द मन्द सिसकारते हुए घरसे बाहर निकल गया।

दुलारी उस समय भी वहां उसी रूपमें खड़ी रही। कुछ देर बाद वह कांपती हुई बैठ गयी।

उसी दिन चम्पाने सन्देहके घोर अन्धकारमें पड़े हुए पड़ोसियों-को सत्यका प्रकाश दिखा दिया। लोगोंका सारा सन्देह दूर हो गया, वे निश्चिन्त हो गये।

यह बात चारों ओर बिजलीकी तरह फैल गयी और फैलते फैलते दुलारीकी सासके कानोंमें भी पहुंची। सुनते ही वृद्धाका सारा शरीर जल उठा। वह जी भरके पड़ोसियोंको गालियां सुनाने लगी। पडोसियोंने वृद्धाकी गालीका कुछ जवाब नहीं दिया, पर वे चुपचाप कोई ऐसा उपाय सोचने लगे जिससे इस गालीका बदला लिया जाय। दुलारीने बहुत कह सुनकर सासको शान्त किया।

दुलारीकी बात मानकर वृद्धा बाहरसे तो शान्त हो गयी पर उसका अन्तर्हृदय शोक, सन्ताप और क्रोधसे आगकी तरह जल रहा था। उसे अधिक दिनतक यह यन्त्रणा भोगनी पड़ी। अन्तमें मौतका बुलावा आ गया। वृद्धा दुलारीके सिरपर हाथ रखकर उसे आशीर्वाद देती

हुई उस लोकको चली गयी जहां दुःख है न सुख और जहां जाने-पर पड़ोसियोंकी प्रतिशोधस्पृहा उसे स्पर्श भी नहीं कर सकती।

पड़ोसियोंने जब यह देखा कि बुढ़िया तो हाथसे निकल गयी, अब बदला किससे लिया जाय तब उन्होंने उसकी मृत देहसे बदला लेनेका सङ्कल्प किया।

सासकी अन्त्येष्टि क्रिया करनेके लिये दुलारी अपने पड़ोसियों-के दरवाजे-दरवाजे घुमी। किसीने भी इस अधर्माचारिणी वृद्धाकी कलुषित शवदेहको स्पर्श कर धर्म-लाञ्छित करनेका साहस नहीं किया। सबोंने समाजकी दुहाई दे-देकर अपने अपने घरका दरवाजा बन्द कर लिया। दुलारीके रोने चिल्लानेपर भी उनके दरवाजे नहीं खुले।

अन्तमें कोई उपाय न देखकर दुलारी रो-रोकर भगवानको पुका-रने लगी। उसका रोना सुनकर गांवके कुछ नवजवान, जो समाजके नियमोंकी परवा नहीं करते और जो माँ-बापकी डांट-डपट सहन करते और गांजा भांग पीनेमें अपना दिन काटते, बुढ़ियाकी अन्त्येष्टि क्रिया करनेके लिये कमर बांधकर तैयार हो गये। कोई लकड़ी काट लाया, कोई कफन ले आया, किसीने चिता सजाई। रानी सासके मुंहमें आग देकर रोती-कलपती घर आयी। युवक भी बुढ़ियाका जल-प्रवाहकर, गंगामें डुबकी लगाकर अपने-अपने घर गये।

दूसरे दिन उन्होंने चेष्टा करके बिसेसरके पास एक आदमी भिजवा दिया।

—*०*—

पांचवां परिच्छेद

श्राद्धके तीन दिन पहले एक बैलगाड़ी आकर घरके दरवाजेके सामने खड़ी हुई। दुलारीने बाहर जाकर देखा, बिसेसर कलकत्तेसे आये हैं। गाड़ीके भीतर पन्द्रह वर्षकी एक युवती थी। उसे उतार-कर घरके भीतर ले गयी। बिसेसर गाड़ीसे सब माल-असबाब उतारने लगा।

घरके भीतर जाकर उस युवतीने दुलारीको प्रणाम किया। दुलारीने उसे दोनों हाथोंसे पकड़कर छातीसे लगा लिया, पूछा—बहिन, तुम्हारा नाम क्या है?

युवतीने हंसते हुए उत्तर दिया—शान्ता।

दुलारीने कहा—बहिन, तुम्हारा नाम तो बहुत अच्छा है, तुम मुझसे उमरमे छोटी हो, मैं तुम्हे' शान्ता कहकर पुकारा करूंगी।

शान्ता—और मैं तुम्हें बहिन कहा करूंगी।

बिसेसरने बाहरसे पुकारा—अरे, यह सब माल-असबावको घरके भीतर ले जाकर रखो।

दुलारी लम्बा घूंघट काढ़कर बाहर आयी और गठरियोंको भीतर रखने लगी। चीजोंको सहेजकर रखनेके बाद दुलारी एक लोटेमें ठंडा पानी और कुछ मिठाई ले आयी। बिसेसर जलपान कर बाहर चला गया।

बिसेसरका आना सुनकर गांवके जो दो-चार धनीमानी आदमी थे, उससे मिलने आये। किसीने पूछा—कहो भाई, कब आये, कलकत्तेसे क्या लाये हो? सुनते हैं वहांका रसगुल्ला बड़ा अच्छा होता है। किसीने कहा—भले मौकेसे आ गये, अब खूब ठाट-बाटसे महतारीकी श्राद्ध करो, उसके ऋणसे उद्धार पाओ, यही हम लोगोंकी लालसा है। यह कहकर सब अपने-अपने घर गये।

दूसरे दिन बिसेसर श्राद्धके सम्बन्धमें परामर्श लेनेके लिये पशुपति पांड़ेके यहां गया। पांड़ेजीकी गांवमें बड़ी चलती थी, बड़ी धाक थी। उस समय पांड़ेजीकी बैठकमें दुबेजी, तिवारीजी, चौबेजी, उपाध्यायजी आदि अनेक 'जी' उपस्थित थे। बिसेसरके जाते ही उन्होंने बड़े आदरसे उसे बैठाया। बिसेसर अलग एक कुशासनपर बैठ गया। उसने उपस्थित सज्जनोंसे हाथ जोड़कर पूछा कि आप लोग बतलाइये, मैं किस तरह माताके ऋणसे उद्धार पा सकता हूं। आप लोग सोच-विचारकर मुझे एक उचित विचार दीजिये।

परामर्शकी कोई कमी न थी। पांड़ेजीने कहा—मैंने इस उम्रमें न जाने कितने वृषोत्सर्ग, कितने श्राद्ध, कितने यज्ञ आदि आदि बड़े काम चुटकी बजाते करवा डाले, कहीं भी तिलमात्रकी भी कसर न रहने पायी या न किसी प्रकारकी गड़बड़ी ही हुई। जहां मैं अभी जीता हूं, वहां बिसेसर, तुम किसी बातकी चिन्ता मत करना। हां, अब केवल यही विचारना है यह काम किस रूपमें किया जाय। इसके बाद तरह-तरहके सवाल-जवाब हुए। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि बहुत अधिक तूल करनेकी आवश्यकता नहीं है, सिर्फ पांच

सौ रुपयेमें ही किसी तरह काम चला लिया जाय। इस गांवके सब ब्राह्मणोंको पुड़ी मिठाई खिलानेका बन्दोबस्त; दूसरे दिन भाइयों-को कच्ची खिला दे। बिसेसरको किसी चीजके लिये चिन्ता न करनी होगी। बस वह केवल रुपया दे दे और काम पांड़ेजी, दुवेजी, तिवारीजी आदि विधिवत् करा देंगे। अहा! बिसेसर क्या कोई पराया है, वह तो अपना ही है।

बस क्या था, उसी समय पांड़ेजीने मैदा, घी, चीनी, मसाला, दाल, दही आदिकी फेहरिस्त तैयार कर दी। फेहरिस्तमें मिर्च, हल्दी, आदि भी नाम नहीं छूटने पाये। इस प्रकारकी सूची बनानेमें पांड़ेजीकी बड़ी ख्याति थी।

सूची लिख जानेपर पांडेजीने बिसेसरको दे दी। उसके बाद पांडेजीने कहा—भाई सब कुछ तो ठीक ठाक हो गया, लेकिन एक बात—

बिसेसर उठकर जा रहा था। पांडेजी की बात सुनकर वह फिर बैठ गया और विस्मयके साथ जानना चाहा कि वह बात क्या है?

पांड़ेजीने चुटकीसे मुंहमें सुर्ती डालते हुए कहा--भाई, बात और कुछ नहीं है--अरे तिवारी, तुम तो जानते हो? कहो न?

तिवारीजीने कहा--आप ही भले कह रहे है, कहिये।

चौबेजीने कहा—हां, आप ही कहिये, पञ्चोंके बीचमें कहना है, सची ही बात कहियेगा, इसमें दोष क्या है?

बिसेसर चकित हो भयसे पञ्चोंकी ओर देख रहा था।

अन्तमें पांड़ेजीने दो तीन बार खास-खूंखकर कहा--क्या कहूं

भाई, बात कुछ और नहीं है, गांव भरमें लोग तुम्हारी स्त्रीके बारेमें कई तरहकी बातें कह रहे हैं। सच-झूठकी बात भगवान जानें।

चौबेजी बोल उठे—केवल भगवान ही क्यों जानते हैं, सारा गांव जानता है। किसने यह बात नहीं सुनी है ?

उपाध्यायजीने कहा—चौबेजीका कहना ठीक है, सबने यह बात सुनी है। और केवल कानोंसे सुनी बात नहीं है, आंखोंसे देखी है। चम्पाने अपनी आंखोंसे देखा है कि दिन दोपहर बिसेसरकी स्त्री हीरालालसे हंस-हंसकर बातें कर रही थी। क्या चम्पाको बुलवाऊं ?

सुनते ही बिसेसरका सिर झुक गया। वह मनमें सोच रहा था कि यदि पृथ्वी फट जाय तो आज अपनी दलाली और माताका श्राद्ध चूल्हेमें फेंककर पातालमें चला जाऊंगा।

पांड़ेजीने बिसेसरकी अवस्था देख करुणाभरे स्वरमें कहा-रहने दो, रहने दो किसीको बुलानेका काम नहीं है। तिवारी, यह सब अपने घरकी बात है। ऐसी बातोंपर जितनी जल्दी परदा डाल दिया जाय उतना ही अच्छा है।

उसके बाद बिसेसरको सम्बोधित करते हुए कहा, "बेटा बिसेसर, संसारमें तो ऐसी बातें सदा होती रहती हैं। चाहे सच हो, या झूठ। जब पांच आदमी ऐसा कह रहे हैं तब इसके 'हां नाहीं'का निपटारा कर लेना उचित है।

बिसेसरने सिर नीचा किये रुद्ध कण्ठसे कहा—कहिये, मैं क्या करूं ?

पांड़ेजी कुछ स्थिर न कर सके, क्या उत्तर दूं। वह अपना सिर

खुजलाने लगे। तब स्पष्ट वक्ता चौबेजीने कहा— अब इसके लिये सोचना विचारना क्या है, शास्त्रके अनुसार काम करना होगा, तुम्हें अपनी स्त्रीको घरसे बाहर निकाल देना होगा। फिर तुम्हें प्रायश्चित्त करना होगा, समाजका दण्ड भुगतना होगा।

इस बार बिसेसरने सिर ऊपर उठाकर देखा। उसने तीव्र स्वरमें कहा—यदि मैं ऐसा न करूं तो—

चौबेजी—तो तुम्हारे घरमें एक कुत्ता भी पैर न रखेगा।

दुबे—बहुत ठीक, बहुत ठीक। समाज और धर्म भी तो कोई चीज है। हम लोग अधर्म कैसे कर सकते हैं?

बिसेसर उठकर खड़ा हो गया। क्रोधके मारे क्षुब्ध होकर उसने कहा—बहुत अच्छा, मैं गंगा किनारे जाकर मांका श्राद्ध करूंगा।

यह कहकर बिसेसर जाने लगा। उसे जाते देखकर पांडेजीने उसका हाथ पकड़कर बैठा दिया। उसके बाद समाजके कर्णधारोंमें फिर कुछ कानाफूसी होने लगी। आपसमे कुछ देरतक परामर्श करनेके बाद पांड़ेजीने बिसेसरसे कहा—अरे भाई, ऐसे मामलोंमें बिगड़नेसे काम नहीं चलता। माताके ऋणसे उद्धार होना है, जरा सोच-समझकर बात कहो, इतना बिगड़ते क्यों हो?

तिवारीजीने कहा—बिसेसर साफ बात यह है कि समाजका अनादर करके कोई कहां जा सकता है। मान लो आज तुम समाज-को छोड़कर चले जाओगे। दो दिन बाद तुम्हें अपना बेटा-बेटीका विवाह करना होगा, जनेऊ देना होगा, तब, बताओ, तुम क्या करोगे?

पांडेजीने कहा—क्या तुम हम लोगोंको छोड़ दोगे? यदि तुम हमें छोड़ भी दोगे तो हम तुमको नहीं छोड़ सकते? तुम तो हमारे ही हो न? पराया तो नहीं हो? जाने दो, वह सब फालतू बात है, तो भी जब, सच या झूठ बात फैल गयी है, तो जरूर कुछ करना चाहिये। तुम्हें अपनी स्त्रीको घरसे निकालना न होगा, और न प्रायश्चित भी करना होगा। बस, बाबा रघुनाथदास वैरागीकी रामलीलामें पचास रुपया चन्दा दे दो।

चौवेजीने कहा—भला, इस फैसलेको कौन सुनेगा?

पांडेजीने बिगड़कर चौकीपर जोरसे हाथ पटकते हुए कहा—किसकी मजाल है जो न सुनेगा, एक सौ बार सुनना पड़ेगा। हमें किसीके सुनने या न सुननेकी परवा ही क्या है? हम पंच हैं, हमी लोग सुनने सुनानेवाले हैं, हमी समाज हैं, हमी सब कुछ हैं, हम आप जो बात तय कर देंगे, उसे कौन नहीं सुनेगा? क्यों क्या कहते हो तिवारी?

तिवारीजीने कहा---हां, आपने ठीक हो तो कहा। किसकी गरदनपर दो सिर हैं?

तब पशुपति पांडेने बिसेसरसे कहा—जा बिसेसर जा। जो मैंने कहा है वही करना तुम्हारे हकमें अच्छा है। अपनी स्त्रीको जरा डांट डपट देना, भले घरकी स्त्रीकी तरह रहा करे। देखना उसे रसोई-पानी मत छूने देना।

उस दिन इतनी कार्यवाही होनेके बाद सभा विसर्जित हुई।

छठा परिच्छेद

जबसे शान्ता आयी है तबसे दुलारी बहुत प्रसन्न रहती है। उसे वह अपनी सहोदर बहिनके समान मानती है, बड़ा आदर करती है, दोनोंमें लेशमात्र भी सौतियाडाह नहीं है।

उस दिन दोनों बैठी आपसमें बातें कर रही थीं। दुलारीने शांताको छातीसे लगाकर कहा--मैं सच कहती हूं शांता, तुम मुझे अपनी बड़ी बहिन समझना।

शांताने अपने कानके पासके बालोंको सुलझाते हुए कहा--किन्तु बहिन एक बात कहना चाहती हूं; बुरा तो न मानोगी?

दुलारी—कहो न, कौन-सी बात है? मैं बुरा न मानूंगी।

शान्ता—यही, कि पहलेमें तुम्हें अपनी सौत समझती थी।

दुलारीने हंसकर कहा—अब क्या समझती हो?

शान्ताने कहा—ठीक अपनी सहोदरा बहिन।

दुलारी स्निग्ध दृष्टिसे शान्ताके प्रफुल्लित मुखकी ओर देखती रही। कुछ देर बाद शान्ताने कहा—अच्छा, बहिन एक बात पूछती हूं, सच-सच बतलाओगी न?

दुलारी--कौन-सी बात?

शान्ता—जब तुमने सुना कि उन्होंने विवाह कर लिया, तब तुम्हें क्रोध आया कि नहीं।

दुलारी—ना, मुझे क्रोध नहीं आया, हां, कुछ दुःख हुआ।

शान्ता—तुम्हें बिल्कुल क्रोध नहीं आया ?

दुलारी—बिलकुल नहीं।

शान्ता—क्यों ?

दुलारी—मुझे क्रोध करनेका अधिकार नहीं था।

शान्ता—पर बहिन जब मैंने सुना कि मेरे एक सौत है, तो क्रोधके मारे मैं तीन दिनतक उनसे बोली नहीं।

दुलारी—तुम्हारा क्रोध गया कैसे ?

शान्ता—आप ही आप चला गया। जब मैंने देखा कि मेरे न बोलनेसे वे उदास रहते हैं, दिन-रात मुंह फुलाये रहते हैं तो मुझसे रहा नहीं गया। मैं आप ही आप उनसे फिर बोलने लगी।

यह कहकर शान्ता हंसने लगी। दुलारी भी खूब हंसी।

शान्ताने कहा—हां, बहिन मांजी तुम्हें खूब मानती थीं न ?

दुलारीने कहा—हां, किन्तु मांजी उतना प्यार नहीं करती थीं।

दुलारीकी आंखोंमें आंसू भर आये। शान्ताने कहा—बहिन, मैंने सब सुना है, मां जीके लिये ही तुम कलकत्ते नहीं गयी। इसीसे तो उनको बड़ा रंज है।

दुलारीने मुस्कुराते हुए—यदि कलकत्ते जाती तो तुम्हारी जैसी बहिन मुझे कैसे मिलती।

शान्ताने भी दुलारीके मुंहके पास अपना मुंह लगाकर कहा—मैं तुम्हारी जैसी बहिन कहां पाती ? पर बहिन, इस बार तुम्हें नहीं छोड़ सकती। इस बार चलोगी न ?

दुलारीने शान्ताके रूखे बालोंको सुलझाते हुए कहा—मेरे जाने-से तुम्हारा क्या उपकार होगा ?

शान्ता स्नेहभरी दृष्टिसे दुलारीके मुंहकी ओर देखती रही। इतने दिनोंतक उसके हृदयपर दुःखका एक भारी बोझ पड़ा था, आज मानो उसका वह बोझ उतर गया। सरलताकी मूर्त्ति शान्ताको देख-कर वह अपने मनमें कहती—ऐसी सौतके हाथोंमें अपने स्वामीको सौंप देनेमें भी मुझे सुख है।

बिसेसरकी आवाज सुनकर दुलारी आंचलसे सिर ढंककर बाहर चली आयी। बिसेसरने घरमें घुसते ही सामने दुलारीको देखकर उत्तेजित स्वरमें कहा—यह सब मैं क्या सुन रहा हूं ?

दुलारीने कुछ उत्तर नहीं दिया, सिरपरका आंचल और नीचे सरका लिया। बिसेसरने उच्च स्वरसे कहा—क्या यह सब सच है ?

दुलारी चुपचाप दीवारको पकड़े खड़ी थी। शान्ताने घरके भीतर-झांककर स्वामीके रोषपूर्ण नेत्र और मुखकी भीषणता देखी। भयके मारे वह भीतर ही सिटपिटा कर रह गयी। दुलारीको निरुत्तर देख-कर बिसेसर और भी क्रोधित हो गया। दांतोंको पीसते हुए उसने श्लेषपूर्ण स्वरमें कहा—मेरे सामने तो इतना लम्बा घूंघट लटका लेती है, और हीरालाल मिश्रके साथ दिन दोपहरको सिर खोलकर हंसी-मजाक करनेमें जरा भी नहीं शरमाती ?

दुलारीने मुंहपरसे घूंघट हटा लिया। पददलिता सर्पिणीकी नाईं उसने तीव्र स्वरमें कहा—तुम किसको यह सब बातें कह रहे हो ? मैं तुम्हारी स्त्री हूं।

बिसेसरने उसी तरह कर्कश स्वरमें—मेरी स्त्री हो, इसीलिये आज पांच आदमियोंके सामने अपना सिर नीचा करना पड़ा और कोई होती तो मुझे परवा न थी।

दुलारीने कहा—जैसा पांच आदमी कह रहे हैं, क्या तुम्हें भी वैसा ही कहना उचित है? क्या तुम उन पांच आदमियोंकी बातका विश्वास करते हो?

बिसेसरने दुलारीकी बातका उत्तर न देकर एक दीर्घ निश्वास लिया। उसके बाद क्रोधके मारे कांपते हुए वहीं चौखटपर बैठ गया। सिरपर बायें हाथको रखकर कुछ देर तक चिन्ता-सागरमें गोते लगाता रहा। थोड़ी देर बाद अपने मनमें कहा—तुम्हारा कुछ दोष नहीं है सब दोष मेरा ही है। यदि मैं इस तरह तुम्हारा तिरस्कार कर तुम्हें यहां छोड़ न जाता तो आज किसका साहस था कि तुम्हें व्यभिचारिणी कहता। ओः, इच्छा होती है कि गलेमें फांसी लगाकर मर जाऊं।

इतने दिनोंतक गांवोंके लोगोंकी बातोंसे दुलारीका हृदय तनिक भी विचलित नहीं हुआ था। पर आज अपने स्वामीके मुखसे उन बातोंकी प्रतिध्वनि सुनकर उसका हृदय खण्ड-खण्ड हो गया। घृणा, लज्जा और अभिमानसे उसका अन्तर्हृदय धधक-धधक कर जलने लगा। वह वहां अधिक देरतक ठहर न सकी। स्वामीकी ओर तिरस्कारपूर्ण तीव्र दृष्टिसे देखते हुए वह गर्वके साथ चली गयी।

शान्ता धीरेसे आकर स्वामीके पास खड़ी हो गयी। उसने कहा-क्या तुम पागल हो गये हो?

बिसेसरने कुछ उत्तर नहीं दिया। शान्ताकी ओर आंख उठाकर

भी नहीं देखा। उसने स्वामीको चुप देखकर जोरसे कहा—छिः छिः, लोगोंके कहनेका विश्वास कर तुम्हें बहिनके प्रति ऐसी कड़वी बातें नहीं कहनी चाहिये थीं। पहले बात तो जान लेते।

विशेखरने तीव्र दृष्टिसे दुलारीको ओर देखते हुए हाथ जोड़कर कहा—शान्ता, रहने दो, माफ करो। मेरे पागल होनेमें कुछ कमी है, उसे पूरा मत करो।

शान्ता मलिन मुखसे स्वामीकी ओर देखती हुई धीरे-धीरे दुलारी-के पास चली गयी।

दुलारी घरके भीतर चारपाईपर पड़ी थी। शान्ता आकर उसके सिरहाने बैठ गयी। उसने कहा—बहिन!

दुलारीने कुछ उत्तर नहीं दिया। शान्ताने उसके सिरको अपनी गोदमें लेकर, अपने हाथसे उसे धीरेसे हिलाते हुए कहा—छिः बहिन, तुम उनकी बात सुनकर इतना दुःख मानती हो?

दुलारी कुछ कहना चाहती थी, पर कह न सकी। उसकी आंखों-से आंसुओंकी धारा बह चली। शान्ता भी अपनी आंखोंकी अश्रु-धारासे अपनी बहिनके हृदयकी ज्वाला शान्त करनेकी चेष्टा करने लगी।

सातवां परिच्छेद

श्राद्ध-कार्य सम्पन्न हो गया। बहुतसे ब्राह्मण, साधु-सन्त, भिख-मंगे खिलाये गये। विद्वान ब्राह्मणोंको विदाई भी यथेष्ट दी गयी। विसेसरने माताकी सहायता करनेमें उसकी जीवितावस्थामें जो कमी रखी गयी थी, उसे आज उसके पारलौकिक कार्यमें यथेष्ट रूपसे पूरा कर दिया। गांवके छोटे-बड़े सभी आदमियोंने विसेसरकी मांकी, ऐसा सपूत उत्पन्न करनेके लिये भूरि भूरि प्रशंसा की।

दुलारी कई दिनोंतक घरसे बाहर नहीं निकली। जिस दिन विसेसरने उसे बुरा-भला कहा, उसी दिनसे जो वह घरमें घुसी, फिर बाहर न निकली। घरके एक कोनेमें चुपचाप पड़ी रहती थी, और कभी मां, मां, कहकर अपने हृदयका अव्यक्त वेदनाको व्यक्त किया करती थी। शान्ता भी उसके पाससे एक क्षणके लिये भी कहीं बाहर नहीं जाती। केवल दिनमें एक बार स्वामीके आवश्यक आदेश पालन करनेके लिये बाहर आ जाती, बाकी समय दुलारीके सिरहाने चुप-चाप बैठी रहती। रातको बहुत कह सुनकर दुलारीको कुछ खिलाती। दुलारीको कुछ खानेकी इच्छा न रहती, पर जब देखती कि उसके न खानेसे शान्ता भी निराहार रह जायगी, तो उठकर अत्यन्त कष्टसे आंसुओंको पोंछ कुछ खा लेती।

पांड़ेजीकी नयी स्त्रीने आकर घरकी मालकिनका पद ले लिया था

और टोले-मुहल्लेकी अन्य स्त्रियां उसकी सहकारिणी बनी थीं। अतः दुलारी अथवा शान्ताकी अनुपस्थितिमें भी कार्यमें कोई त्रुटि नहीं पड़ी। हां, चीजें कुछ-कुछ अधिक खर्च हो गयीं, हालांकि बीच बीचमें पांडेजी आकर कह जाया करते थे—देखो, जिसमें एक तिल भर भी कोई चीज बरबाद न हो।

कार्य-समाप्त हो जानेपर पांडेजीकी स्त्री भण्डारका हिसाब किताब समझा-बुझाकर चली गयी।

श्राद्धकी भीड़भाड़ जब खतम हो गयी तब बिसेसरने दुलारीको बुलाकर कहा—अच्छा, अब बतलाओ, असल बात क्या है?

दुलारीने कहा—क्या मेरेही मुंहसे सुनना चाहते हो?

बिसेसरने कहा—हां!

तब दुलारीने हीरालालके आनेसे उसके खदेड़े जाने तककी सारी बात खोलकर कह दी। बिसेसर चुपचाप बैठा सुन रहा था। कहना समाप्त हो जानेपर दुलारीने स्वामीके मुंहकी ओर देखकर कहा—क्या अब विश्वास होता है?

बिसेसरने कहा—हां।

दुलारी—किसका विश्वास होता है?

बिसेसर—तुम्हारी बातोंका।

दुलारी—मैं तो झूठ भी बोल सकती हूं?

दुलारीकी ओर तिरस्कारपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए कहा—हां, तुम झूठ बोल सकती हो; पर मैं अब भी इतना नीच नहीं हो गया हूं कि मैं तुम्हे मिथ्यावादिनी समझूंगा। दुलारी लज्जित हो गयी।

सुनते ही स्वामीकी बड़ी प्रशंसा की। कुछ देर सोचनेके बाद बिसेसर-ने कहा-अच्छा, तो अब तुम क्या करना चाहती हो?

दुलारी-तुम मुझे क्या करनेके लिये कहते हो?

बिसेसर—क्या जो मैं कहूंगा वही करोगी?

बिसेसरके शब्दोंमें व्यंगकी पुट थी। दुलारीने किञ्चित् लज्जित होकर कहा—यदि अच्छा समझूंगी, तो करूंगी।

बिसेसर—तो मेरे साथ कलकत्ता चलो।

दुलारी—वहां जाकर क्या करूंगी?

बिसेसरने अपने मनमें कहा—मेरा श्राद्ध करना। प्रकट कहा—स्त्री अपने स्वामीके घर जाकर क्या करती है?

दुलारी—घर गीरस्तीका इन्तजाम करती है।

बिसेसर—तुम भी वही करना।

दुलारी—मैं वह करने योग्य नहीं हूं।

बिसेसर—क्यों?

दुलारी—मैं समाजमें पतिता हूं।

बिसेसरने मुस्कुराते हुए कहा-वहां 'समाज' का 'स' भी देखनेको नहीं मिलेगा।

दुलारी—किन्तु यहां तो समाज ही सब कुछ है।

बिसेसर—यहां नगद नारायणके दे देनेमें सब कुछ किया जा सकता है।

दुलारी—किन्तु क्या यह अपमानजनक बात नहीं होगी?

बिसेसर—मान अपमानकी बात मैं सब समझ लूंगा।

दुलारी—मैं तुम्हारी स्त्री हूं, मुझे भी तो उसे समझना चाहिये।

विसेसरने कुछ क्रुद्ध होकर कहा-मैं इतना तर्क वितर्क करना नहीं चाहता। अब तुम साफ बतलाओ, मेरे साथ चलना चाहती हो या नहीं?

दुलारी—मैं नहीं जाऊंगी।

विसेसर—तब मुझे सब बातें समझाकर कहनेकी क्या जरूरत थी?

दुलारी—इसलिये कि तुम्हारे मनमें कोई सन्देह न रह जाय।

विसेसर—मैं स्त्री नहीं हूं जो एक साधारण बातसे ही सन्देह कर लूंगा। मुझे तो पहलेसे ही सन्देह न था।

दुलारी—तो भी अपनी निर्दोषिता तुम्हें बतला देना मेरा कर्त्तव्य था।

उत्कंठित होकर विसेसरने कहा—और अपने स्वामीके साथ रहना तुम्हारे लिये अकर्त्तव्य है?

दुलारीने कहा—क्रोध मत करो। शान्ता तुम्हारी अनुपयुक्त स्त्री नहीं है।

विसेसर—शान्ता! शान्त! वह दुलारी नहीं है।

दुलारी—संसारमें सब किसीको दुलारी ही नहीं मिली है। तुम्हें शान्तासे ही सन्तुष्ट रहना उचित है।

विसेसरने तीव्र दृष्टिसे दुलारीके मुंहकी ओर देखा और हंसते हुए कहा—मैं समझता हूं दुलारी! किन्तु मैंने सोचा था, कि तुम्हारे मनमे सौतियाडाहको स्थान नहीं मिलेगा।

दुलारी बैठी थी, वह उठकर खड़ी हो गयी। स्वामीकी ओर

तीक्ष्ण कटाक्ष फेकती हुई, क्रोधसे कांपते हुए उसने कहा—तुम पुरुष हो, स्त्रीके हृदयकी बात किस प्रकार समझ सकोगे ? मेरे हृदयमें यदि सौतके प्रति किञ्चित भी विद्वेष होता तो मैं तुम्हारे पावोंपर पड़कर तुम्हारे साथ जाती।

यह कहकर दुलारी स्वामीके सामनेसे चली गयी। बिसेसर स्तम्भित होकर वहीं बैठा रहा, मनमें सोच रहा था—स्त्रीका हृदय एक पहेली है, हम पुरुष उसे कुछ भी नहीं समझ सकते।

अकस्मात् उसने अपने कन्धेपर किसीके कोमल स्पर्शका अनुभव किया। देखा, शान्ता खडी है। स्वामीके देखते ही वह ठठाकर हंस पड़ी। शान्ताकी हंसीसे बिसेसरका हृदयभार कुछ हल्का हो गया। बिसेसरने कहा—कौन ? शान्ता !

शान्ता—हां, यहां बैठे क्या सोच रहे हो ?

बिसेसर—क्या बतलाऊं कि क्या सोच रहा हूं ? आकाश पाताळ, मनुष्य, पशुपक्षी, भूतप्रेत……

अन्तिम बात सुनकर शान्ता सिहर गयी। उसने भयभीत होकर कहा—भूतप्रेतकी बात क्यों सोच रहे हो ?

बिसेसरने मुस्कुराते हुए कहा—तुम डर क्यों गयी ?

शान्ता—शामको ये सब नाम नहीं लेने चाहिये। क्यों, क्या इनके सिवा तुम्हें और कुछ सोचना नहीं है ?

बिसेसर—और क्या है ?

शान्ता—मैं हूं—बहिन है।

बिसेसर—तुम्हारी बहनकी ही बात तो सोच रहा था।

शान्ताने मुंह चमकाते हुए कहा—बहुत अच्छा, बहनकी बात भी सोचना सीख गये !

बिसेसरने मनही मन कहा—तुम क्या समझोगी, शान्ता ! उसकी बात आज तीन वर्षसे सोचता आ रहा हूं। तुम्हारी मन्द मन्द मुस्कुराहटसे मेरे मनकी व्यथा प्रायः दूर हो गयी, पर उसकी चिन्ता अभी-तक नहीं मिटी, वरन् और भी बढ़ती ही जा रही है। मै तुम्हे एक क्षणके लिये भूल सकता हूं पर उसकी चिन्ताको किसी तरह भी भूल नहीं सकता।

शान्ताने पुनः स्वामीको चिन्तामग्न देख उनके हाथको अपने हाथमें लेकर कहा—हां, क्या सच ?

बिसेसर—क्या सच, शान्ता ?

शान्ता—क्या तुम सचमुच बहिनकी बात सोच रहे हो ?

बिसेसर—हां।

शान्ता—बहिनको इस बार अपने साथ ले जाना होगा।

बिसेसर—वह जाना नहीं चाहती।

शान्ताने सिर हिलाते हुए कहा—हां। क्यों नहीं जाना चाहती, तुम अपने साथ ले तो जाओ।

बिसेसरने एक दीर्घ निश्वास लेकर कहा—नहीं शान्ता, मैं सचमुच उसे ले जाना चाहता हूं, किन्तु वह जायगी नहीं।

शान्ता—तुमसे यह किसने कहा।

बिसेसर—वह आप ही आप कह गयी है।

शान्ता—ना, ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं कहतो हूं, बहिन

मुझको छोड़कर किसी तरह भी नहीं रह सकती। यदि तुम उसे न ले जा सकोगे तो मैं उसे जबर्दस्ती ले जाऊंगी।

बिसेसरने हंसकर कहा—ले जाओगी ?

शान्ता—निश्चय ले जाऊंगी।

बिसेसर—किन्तु वह किसी तरह भी नहीं जायगी।

शान्ता स्वामीका हाथ छोड़कर उठ खड़ी हुई। उसने जोरसे कहा—जायगी, वह जरूर जायगी। मेरे रोनेसे ही वह जानेके लिये तैयार हो जायगी। देखो मैं उसकी राय लेकर आती हूं।

शान्ता 'बहिन' 'बहिन' पुकारती हुई बाहर चली गयी। बिसेसर एक दीर्घ निश्वास लेकर पुनः चिन्ता मग्न हो गया।

आठवां परिच्छेद
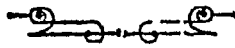
इधर दुलारीको अपने मनके साथ कैसा भीषण संग्राम लड़ना पड़ा उसका हाल वही जानती थी। उसके एक ओर स्वामी—संसारके सार, प्राणोंके आधार, नारीत्वके एक मात्र आश्रयस्थान—स्वामी हैं, दूसरी ओर अभिमान—नारीत्वका दुर्ज्जेय अभिमान है। दूर हो अभिमान, रसातलको चला जाय गर्व। क्या मैं पति प्रेमके प्रबल प्रवाहमें अपने अभिमानको नहीं बहा सकती? बहा देनेमें क्या हानि है? वरन् यथेष्ट लाभ है। तब इस लाभकी आशा क्यों छोड़ दूं। किस अज्ञात सुखकी आशासे स्वामीके सादर आह्वानकी उपेक्षा करूं? संसारके किस सुखके आकर्षणसे नारी जीवनके सुख और अभिलाषाका विसर्जन कर उपेक्षित, व्यथित और आशाकान्त जीवन वहन करने जाऊंगी। क्या एक असहाया स्त्री स्वेच्छासे अपने सुखके पथमें कांटे बिछाकर जीवनको असह्य दुःखके भारसे लाद देगी? या वह स्वामीके अपार स्नेह-सागरमें अपनी जीवन-नौकाको छोड़कर अपना नारी-जन्म सार्थक करेगी।

किन्तु दुलारी ऐसा न कर सकी। नारीत्वका गर्व, रमणी हृदयका दुर्ज्जेय अभिमान अटल पर्वतके समान आगे आकर खड़ा हो गया। छिः छिः जिसने एक साधारण अपराधके लिये उसे इतना कठोर दंड दिया, उसके अधिकृत आसनपर दूसरेको लाकर बिठाया, उसके प्रेमको

तिरस्कृत कर संसारमें उसे हास्यास्पद बना दिया, क्या उसी . . .
दो चार मीठी मीठी बातोंसे मुग्ध होकर कुत्तेकी तरह वह उनके
पीछे चले. संसारके सामने अपनी हीनता और दीनता प्रकट करे
यह नहीं हो सकता। वह स्वामीको देवताके समान पूजा कर
है, पर किसीके सामने अपनी दीनता नहीं दिखा सकती।

पर बीचमें एक बड़ी बाधा शान्ता थी। यदि शान्ता ठी
सौतकी तरह रहती, दुलारी यदि उसे सौतकी क्रूर दृष्टिसे देख
तो वह न जाने क्या करती? पर शान्ता तो उसकी सौत नहीं थ
वह एक सरला बालिका थी। उसके कोमल हृदयमें ईर्ष्या, द्वेष, छ
कपटका नाम न था। था केवल प्रेम, अगाध असीम प्रेम। जि
प्रेमसे पराया अपना हो जाता है, शत्रु मित्र हो जाता है, पत्थर भ
पिघलकर मोम बन जाता है, उसी प्रेमसे उसका हृदय परिपूरित था
दुलारी सब कुछ कर सकती थी, पर अपने लिये शान्ताको रुला
नहीं चाहती थी। वह अन्ततः अपनी अधिकारप्रतिष्ठाके लिये यु
करनेको अग्रसर होती, किन्तु जो आप ही आप हार मानकर विज
माला पहना रही है, उसके साथ युद्ध कैसे किया जाय?

और युद्ध करनेका प्रयोजन ही क्या था? जब शान्ता तैयार
ही तब दोनों आपसमें अपने अपने भागका निपटारा कर लेतीं और
सारा झगड़ा बखेड़ा मिट जाता। किन्तु संसारमें ऐसे बहुत आदमी हैं
जो बांट-बखरेमें पड़ना नहीं चाहते। या तो वे स्वयं सबका सब
लेना चाहते हैं या सबका सब दूसरेको दे देते हैं। भाग करके पूर्ण
अधिकारका एक टुकड़ा लेकर वे सन्तुष्ट नहीं होते। दुलारीकी

की प्रकृति ठीक वैसी ही थी। अतः दुलारीने बांट-बखरा पसन्द न कर सबका सब अपनी सौतको दे दिया। इस दानसे उसे कितना सुख मिला वह वही जानती थी। एक दानशील धनीको अपना सर्वस्व दान देकर पर्ण-कुटीमें वास करनेसे जो सुख मिलता है, वैसा ही सुख उसे मिला।

किन्तु शांताने बड़ा गोलमाल मचाया। वह अपनी बहिनको साथ ले जानेके लिये रो धोकर बिसेसरको इतना दिक करने लगी कि उससे कुछ करते न बना। जब स्वामीसे कुछ बन न पड़ा तो अंतमें उसने दुलारीको पकड़ा। दुलारीने उसे बहुत तरहसे समझाया बुझाया, आश्वासन दिया, पर शांताने एक न सुनी! उसने दुलारीके पैरोंपर पड़कर, आंखोंसे आंसुओंकी धारा बहाकर, सौ सौ सौगन्धें खाकर एक काण्ड सा उपस्थित कर दिया। दुलारीने सोचा कि सब ओर तो मैंने सम्भाल लिया पर शान्ताकी बात नहीं सम्भाल सकती।

अन्तमें दुलारीने उसे समझाकर कहा—क्या करूं बहिन, मेरे लिये जाना ठीक नहीं है।

शान्ताने कहा--क्यों, यहां तुम्हारा क्या है?

दुलारी—सास-ससुरका घर है। तुम तो जानती ही हो इसी घरकी मायासे मांजी सब कुछ छोड़ छाड़कर यहां पड़ी थीं। मेरे चले जाने-पर इस घरमें शामको चिराग कौन जलायेगा।

शांता—अच्छा, तो मैं भी तुम्हारे ही साथ रहूंगी। मेरे भी तो ससुरका घर है. मैं भी शामको चिराग जलाऊंगी।

दुलारी—क्या ऐसा हो सकता है?

शान्ता--क्यों नहीं हो सकता, जरूर होगा। मैं भी यहीं रहूंगी

तब दुलारीने कुछ सोचकर कहा---तुम्हारे यहां रहनेपर उनकी देख-रेख कौन करेगा ? उन्हें तो कष्ट होगा।

शांता कुछ सोचने लगी। दुलारीने सोचा, दवा काम कर गयी। तब उसने दवाको और तेज करनेके अभिप्रायसे कहा—वह वहां अकेले रहेंगे तो जरा सोचकर देखो, उन्हें कितना कष्ट होगा ? यदि कभी सर्दी, बुखार हो जाय तो—

शांताने सिर ऊपर उठाकर कहा—बस बस, मैं समझ गयी, तुम जाना नहीं चाहती।

कहते कहते शान्ता रोने लगी। रोती हुई ही वह वहांसे चली गयी। दुलारीने सजल नेत्रोंसे उसकी ओर देखकर अपने मनमें कहा—हाय ! शान्ता ! यदि तुम्हारे सरल हृदय जैसा मेरा हृदय होता !--उसके बाद जब बिदाईका समय आया, माल असबाबकी गठरी बांधकर बिसेसर जानेको तैयार हुआ, घरके सामने गाड़ी आकर खड़ी हो गई, तब शान्ताने दुलारीके गलेमें दोनों हाथ डालकर रोते हुये कहा, बहिन मैं समझ गयी, मेरे जीते जी तुम नहीं जाओगी। अच्छा मेरे मरनेपर जाना।

दुलारीने रोते रोते शान्ताका मुंह बन्द करते हुए कहा—अभागिन, कैसी बात मुंहसे निकाल रही है।

शांता दुलारीकी छातीमें अपना मुंह छिपाकर फूट फूटकर रोने लगी। दुलारीके आंसुओंसे शांताका सिर भींग गया।

बिसेसरने पुकारकर कहा—अरे जल्दी चलो, वक्त हो गया।

दुलारीने अत्यन्त कष्टसे शान्ताके बाहुबन्धनसे अपनेको मुक्त किया। उसके बाद उसे ले जाकर गाड़ीमें बिठाया। गाड़ीमें बैठकर शांताने केवल एकबार दुलारीकी ओर देखकर आंचलसे अपना मुंह ढांक लिया। दुलारी भी आंचलसे आंसू पोंछती हुई दरवाजेके पास आकर खड़ी हो गयी।

गाड़ीमें चढ़ते समय बिसेसरने दुलारीको लक्ष्य करके कहा-यदि जरूरत हो तो मुझे खबर देना। रानीने उसका कोई उत्तर नहीं दिया। गाड़ी चली गयी।

गाड़ी जबतक मोड़पर जाकर आंखोंसे ओझल नहीं हो गयी तबतक दुलारी अनिमेष दृष्टिसे उसकी ओर देखती रही। अन्तमें जब कुछ भी नहीं देखा गया, पहियोंका शब्द भी हवामें मिलकर सुनाई नहीं पड़ने लगा, तब रानी घरमें आकर चारपाईपर लेटकर फूट फूटकर रोने लगी।

नवां परिच्छेद

दो पहर बीत चुका है। पेड़ोंकी छाया ईशान कोनकी ओर पड रही है। दुलारी वैसी ही अपने घरमें चारपाईपर पड़ी है। इसी समय मनोरमाने आकर कहा—बहिन ! ओ बहिन !

मनोरमाकी आवाज सुनकर दुलारी हड़बड़ा कर उठी। मनोरमाकी ओर देखकर उसने कहा—तुम कब आयी, बहन ?

यह कहकर दुलारी मनोरमाको पकड़कर घरमें ले गयी। मनोरमाने चारपाईपर बैठकर कहा—आज सवेरे आयी हूं, बहिन। तुम्हारी ऐसी दशा क्यों है ? सुना, मांजीका स्वर्गवास हो गया !

दुलारी—हां, बहिन ! मुझे अकेली छोड़कर वह चली गयीं।

मनोरमा—मरनेकी तो उनकी अवस्था ही हो गयी थी। उनके लिये चिंता करना व्यर्थ है। तुम इस तरह उदास क्यों पड़ी हो ? क्या बीमार हो ?

दुलारी—ना, बीमार नहीं हूं। तुम वहां कैसी थी ? बहुत दुबली पतली हो गयी हो !

मनोरमाने हंसकर कहा—और तुम हाथीकी तरह मोटी हो गयी हो। सच बताओ, तुम्हारा चेहरा उतरा हुआ क्यों दीख पड़ता है ? आज खाया है या नहीं ?

दुलारी—नहीं, अभीतक खाया नहीं है।

मनोरमा—अब कब खाओगी? बिसेसर तो आये थे न?

दुलारी—हां, आये थे।

मनोरमा—क्या चले गये?

दुलारी—हां, चले गये।

मनोरमा—कब गये?

दुलारी—आज ही।

मनोरमा—तुम उनके साथ क्यों नहीं गयी?

दुलारी—उनके साथ जाकर क्या करती?

मनोरमा—अपना श्राद्ध।

दुलारी—उसे यहीं करनेमें क्या हानि है?

मनोरमा—यहां पिण्डदान कौन करेगा?

दुलारी—तुम कर देना।

मनोरमा—आग लगे तुम्हारे मुंहमें। सच बताओ; तुम क्यों नहीं गयी?

दुलारी—जानेकी इच्छा न थी।

मनोरमाने कुछ क्रोधित होकर कहा—अभागिन कहींकी, स्वामीके साथ जानेकी इच्छा न थी?

मन्द मन्द हंसते हुए दुलारीने कहा—क्या करूं भाई! मन तो अपने वशमें नहीं रहता।

मनोरमा—उनके साथ और कौन आयी थी?

दुलारी चुप हो रही। मनोरमाने हंसते हुए कहा—हां, हां, मैं समझ गयी, तुम्हारी सौत आयी थी।

दुलारीने कहा—सौत नहीं, शान्ता ?

मनोरमा—शान्ता कौन ?

दुलारी—मेरी सौत, ना, ना, मेरी छोटी बहन।

मनोरमा—दूर हो कलमुंही, कहीं सौत भी बहन होती है ?

दुलारी—पहले तो नहीं जानती थी; पर अब जान गयी कि सौत भी बहन होती है।

दुलारीकी आंखोंसे झर-झर आंसू गिरने लगे। मनोरमाने कहा—यह क्या ! तुम रोती क्यों हो ?

बहुत देरके बाद अपनेको सम्भालकर दुलारीने आंचलसे आंख पोंछते हुए कहा—छोड़ो, इन बातोंको, अब अपनी बात कहो, वहां कैसे रही ?

मनोरमा—वहांकी बात क्या पूछती हो, स्वर्गका सुख था।

दुलारी—तब स्वर्गको छोड़कर मर्त्यलोकमें क्यों आयी ?

मनोरमा—यहां सखीसे बात कर दिल बहलाने आयी।

दुलारी—क्या वहां कोई सखी नहीं मिली ?

मनोरमा—सखी नहीं, एक सखा मिला था।

इसी प्रकार कुछ देरतक दोनोंमें बातचीत होती रही। अन्तमें दुलारीने कहा—अच्छा, अपनी हंसी-दिल्लगी रहने दो, साफ-साफ बतलाओ कि बात क्या है ?

सहसा मनोरमाकी हंसी न जाने कहां विलीन हो गयी। उसने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—बहन, साफ साफ क्या बतलाऊं ! विधवाको न तो अपने बापके घरमें सुख है और न ससुरके घरमें

शांति। जब कहीं भी सुख नहीं मिला तो सोचा, गलेमें फांसी लगा-कर अथवा जहर खाकर दुःखसे छुटकारा पा जाऊं। पर मेरे भाग्यमें आत्महत्या करनेका पाप नहीं लिखा था, इसीलिये यहां चली आयी। मेरा यह लोक तो चला ही गया, आत्महत्या करनेसे परलोक भी चला जाता।

मनोरमा एक ठण्डी सांस लेकर चुप हो गयी। दुलारीने भी सहानुभूतिसूचक एक लम्बी सास लेकर करुण स्वरमें कहा—सच कहती हो बहन, तुम्हें बड़ा दुःख है।

मनोरमाने कहा—बहन, विधवाको कब और कहां सुख मिला है? चूल्हेमें जाय सुख-दुःख,—मेरी सखी जीती रहे!

दुलारीने हंसकर कहा—और मैं सुख नहीं चाहती। हम दोनों सखी किसी तरह जीती रहें, यही बहुत है। सच कह रही हो बहन, तुम्हारे आनेसे मुझे बड़ा सुख मिला। दो घड़ी बातें कर हम अपना दिल बहला लिया करेंगी।

मनोरमा—हां, जब दिल-बहलाव करनेके साथीको तुमने छोड़ ही दिया, तब मट्ठा पीकर ही दूधके स्वादका आनन्द लेना होगा।

दुलारी—जले हुए दूधसे मट्ठा अच्छा होता है।

दोनों हंस पड़ीं। दोनोंके दुःख-तमाच्छादित हृदयोंमें सुखके प्रकाशकी एक झलक दीख पड़ी।

इस आख्यायिकाके साथ मनोरमाका घनिष्ट सम्बन्ध है। अतः उसका परिचय देना आवश्यक है।

———

दसवां परिच्छेद

बिसेसर तिवारीके घरके पास ही दीनदयाल चौबेका घर था। पुरोहिती करके वे अपना जीवन निर्वाह करते थे। गांवके बहुतसे क्षत्रिय उनके यजमान थे। संसारमें जितने व्यवसाय हैं, सबमें कुछ-न-कुछ मूलधनकी आवश्यकता होती है, पर पुरोहिती ही एक ऐसा रोजगार है, जिसके लिये किसी प्रकारके मूलधनकी आवश्यकता नहीं पड़ती। यदि कुछ मूलधन रहे भी तो उसका प्रयोजन बहुत कम पड़ता है। पुराने जमानेमें विद्या नामक एक मूलधनकी आवश्यकता पड़ती थी, पर आजकल तो देशमें विद्याकी बाढ़-सी आ गयी है। इसलिये इस मूलधनके बिना ही अब यह व्यवसाय मज़ेमें चलता है। अब तो केवल स्त्रियोंको भुलानेके लिये दो-चार मीठी बातें, बाहरी आडम्बर, शनिस्तोत्र, नवग्रह-स्तोत्र, सत्यनारायणकी कथा आदि दो-चार छोटी-छोटी पुस्तकोंका पढ़ना आदि कई एक विषयोंको जान लेनेसे ही इस रोजगारमें यथेष्ट उपार्जन किया जा सकता है। इधर-उधरके कुछ श्लोकोंको कंठस्थ कर लेने तथा पोथी-पत्रा देखकर शुभ-अशुभ यात्राके दिन बतला देनेसे ही अनेक महामहोपाध्याय भी ऐसे पंडित महाशयके दर्शनोंके लिये लालायित रहेंगे।

पंडित दीनदयाल चौबेमें पुरोहितके उपर्युक्त सभी गुण तो विद्यमान थे ही; इसके अतिरिक्त वे बगलमें लघुसिद्धान्तकौमुदी और

मुहूर्त्तचिन्तामणिकी पोथी दाबकर पं० सत्यदेव शास्त्रीकी पाठशालामें भी दस-पन्द्रह दिन हो आये थे। अब भला उनकी बराबरी करने-वाला कौन पंडित था? वह एक ही श्लोक 'मंगलम् भगवान विष्णु' आदिके जोरसे विवाह, श्राद्ध आदि समस्त कर्मकांडकी क्रिया करा देते थे। उन्हे यजमानोंसे काफी दक्षिणा भी मिलती थी। चौबेजी-को पुस्तक उलटनेकी तो शायद ही कभी आवश्यकता पड़ती थी; क्योंकि जिन दो-चार श्लोकोंसे वह अपना पाण्डित्य प्रदर्शन करते थे, वे तो प्रायः उनको कंठस्थ ही थे। हां, सालमें एक बार उन पुस्तकोंको खोलकर धूपमें सुखा लिया करते थे।

गांवमें उनकी पंडिताईकी बड़ी ख्याति थी। लोग उन्हें शास्त्रज्ञ जानकर उनकी बड़ी श्रद्धा करते थे। उस साल उनके एक यजमान ठाकुर शिवनन्दन सिंहके यहां एक बरात आयी थी। उसमें काशीके कई एक विद्वान् पण्डित आये थे। गांवमें पंडित दीनदयाल चौबेके सिवा और कोई विद्वान पंडित था ही नहीं। इसलिये चौबेजी ही वरपक्षके पंडितोंसे शास्त्रार्थ करनेके लिये कमर कसकर तैयार हो गये। काशीके पडितोंके प्रश्न पूछनेपर पं० दीनदयालजी बिना समझे-बूझे आंख मूंद कर अपनी रटी हुई लघुसिद्धान्त कौमुदी और होड़ा-चक्र एक ही स्वरमें सुना गये। यदि बीचमें उन्हें कोई छेड़ता तो, 'श्रूयताम्' 'श्रूयताम्' कहकर उनका मुंह बन्द कर देते। काशीके पंडित चौबेजीकी मूर्खतापर मन-ही-मन खूब हंसे और उनसे अपनी हार मान लेनेमें ही उन्होंने अपना गौरव समझा।

पंडित दीनदयालजीकी इस विजयसे गांववाले बहुत प्रसन्न हुए

और उनके अगाध पांडित्यमें उनका विश्वास और भी दृढ़ हो गया। ठाकुर शिवनन्दन सिंहकी छाती फूलकर दूनी हो गयी। उन्होंने प्रसन्न होकर पंडितजीकी दक्षिणाकी मात्रा बढ़ा दी।

इसी प्रकार पण्डित दीनदयालने कहीं अपने विचित्र शास्त्र-ज्ञानके बलसे और कहीं डंडेके बलसे अनेक पण्डितोंको शास्त्रार्थमें हराकर बड़ी ख्याति अर्जन की।

यह सब कुछ होनेपर भी पण्डितजीको एक पुत्रका अभाव बहुत खटकता था। संसारमें उन्हें किसी चीजकी कमी नहीं थी, यदि कोई कमी थी तो केवल एक पुत्ररत्नकी। एक कन्या मनोरमा थी, पर वह भी दो दिनके बाद दूसरेके घर चली जायगी ; साथ ही वह पितरोंके जल-पिण्डदानकी अधिकारिणी भी नहीं है। पितृ-कुलका उद्धार करनेके लिये एक सुपुत्र पैदा हुआ था ; पर वह दो वर्षसे अधिक संसारका सुख न भोग सका। उसके बाद पण्डित दीनदयालजीने न जाने कहां कहांसे तरह-तरहकी जड़ी-बूटी लाकर गृहिणीकी कमर और गलेमें बांधी, पर कुछ भी फल नहीं हुआ।

जिस समय दुलारी अपने स्वामीके घर गयी उस समय मनोरमाकी अवस्था ग्यारह वर्षकी थी। दोनोंकी उम्र प्रायः समान थी ही, इसलिये दोनोंमें बड़ी घनिष्ठता हो गयी। सूर्य और चन्द्रमाको साक्षी मानकर दोनोंने परस्पर मित्रता स्थापित की। मनोरमा उस समय अविवाहिता थी।

उसके बाद जब मनोरमा बारह वर्षकी हुई, तब उसके विवाहकी बातचीत चलने लगी। पंडितजी इधर-उधर वरकी खोज करने लगे।

पर बहुत खोजनेपर भी कोई सुपात्र नहीं मिला। यदि लड़का सुशिक्षित मिलता तो धनी घर नहीं मिलता, यदि धनी घर मिलता तो लड़का पढ़ा-लिखा नहीं मिलता। यदि दैववश कहीं दोनोंका सुयोग मिल जाता तो लड़केके बापकी तिलक-दहेजकी बात सुनकर चौबेजी करुणानिधान भगवान् श्रीकृष्णका नाम जपने लग जाते।

वरकी खोजमें पण्डितजीके पांवकी पनही घिस गयी। अन्तमें एक सुपात्र मिला। उसका घर भी अच्छा था, खाने-कपड़ेकी कोई कमी नहीं थी। कुछ कारबार भी होता था। पात्रमें यदि कोई दोष था तो केवल यही, कि वह 'दोव्याह' था। उसकी पहली स्त्री मर चुकी थी। दोआह होनेपर भी उसकी उम्र चालीस वर्षसे अधिक नहीं थी। उसके मां-बाप नहीं थे और पहली स्त्रीके भी कोई संतान न थी। केवल एक छोटा भाई था। उसके दो लड़के थे।

प० दीनदयाल चौबेने इसी सुपात्रके हाथमें अपनी कन्याको समर्पित किया। कन्याके विवाहमें जो कुछ खर्च पड़ा, उसे चौबेजीके यजमान ठाकुर शिवनन्दन सिंहने दे दिया। ऐसा योग्य विवाह करनेके लिये गांवके लोगोंने चौबेजीकी बड़ी प्रशंसा की; पर कितने ही दुष्ट लोगोंने सन्देह किया कि घर-खर्चके लिये पं० दीनदयालने अपने दामादसे एक सौ पचहत्तर रुपये लिये हैं। पर उनके इस सन्देहका कोई सन्तोषजनक प्रमाण नहीं था।

विवाहके बाद कुछ दिनतक ससुरालमें रहकर मनोरमा फिर पिताके घर चली गयी, पर फिर वहांसे ससुराल लौट आनेके उसके दिन नहीं आये। मनोरमा घर आनेके थोड़े ही दिन बाद पं० दीन-

दयालको समाचार मिला कि उनके दामाद अपने पुराने रोगके एक-ब-एक बढ़ जानेके कारण परलोक सिधार गये। मनोरमाकी माने रो-चिल्लाकर आसमान सिरपर रख लिया। चौबेजी कन्याकी सम्पत्ति-की उचित व्यवस्था करनेके लिये उसी समय दामादके घर गये।

किन्तु वहां जाकर उन्होंने जो कुछ देखा-सुना, उससे उन्हें ऐसा ज्ञात हुआ मानो उनके सिरपर वज्रपात हुआ हो। उनके दामाद मरनेके पहले वसीयतनामा लिखकर अपने छोटे भाई देवीदत्तको समस्त सम्पत्तिका अधिकारी बना गये थे। स्त्रीके लिये वह यह व्यवस्था कर गये थे कि यदि उनकी स्त्री सच्चरित्रा रहे तो उसे घरमें रहने दिया जाय और जीवनभर उसे खाना-कपड़ा मिला करे। यथा-सम्भव तीर्थ-व्रतादि करनेके लिये भी खर्च दिया जाय।

दीनदयाल चौबेने वसीयतनामेके झूठ-सचके बारेमें गांवके दो-चार भले आदमियोंसे पूछा। सबने कहा—वसीयतनामा जाली नहीं है। मरनेके दो दिन पहले होश-हवास दुरुस्त रहनेपर घनश्याम दुबेने उन लोगोंके सामने ही वसीयतनामा लिखा था।

दीनदयालने हताश होकर कहा—उस समय उनका होशहवास ठीक नहीं था। उन लोगोंने कहा—उनका होशहवास ठीक था या नहीं, इसका प्रमाण आप अदालतसे ले सकते हैं। जो कुछ हम लोग जानते हैं, वही कहा और आगे भी कहेंगे।

किन्तु अदालतसे प्रमाण ले आना कितना कठिन होता है, वहां रुपया ले जानेसे किस प्रकार छीना झपटी होने लगती है, इसे पं० दीनदयालजी बखूबी जानते थे। अन्तमें हताश होकर वह अपने

घर लौट आये। मृत दामादपर उन्हें बड़ा क्रोध आया। अभागा इतनी उम्रमें विवाह करके अपनी विधवा स्त्रीके लिये कोई व्यवस्था नहीं कर गया? सब धन अपने छोटे भाईको देकर यदि स्त्रीके लिये दस बीघे जमीन भी दे जाता तो उसका काम मजेमें चल जाता। हाय! हाय!! स्त्रीका पाणि-ग्रहण कर उसे इस तरह गड्ढेमें ढकेल देना! भगवन्! धर्मपर यह अत्याचार कबतक सहोगे?

पर धर्म महाशय परलोकमें दामादके सम्बन्धमें क्या व्यवस्था कर रहे थे, यह जाननेकी कोई सम्भावना न थी। अतः उनके क्रोधका निशाना परलोकगत दामाद तक न पहुंच कन्याके ही ऊपर पड़ा। कैसी कुलक्षणी, अभागिनी है यह! विवाहके बाद एक वर्ष भी सुखसे नहीं बीतने पाया। यदि यह कुछ दिन भी अपने स्वामीके घर रहने पाती तो सारी सम्पत्तिकी अधिकारिणी यही होती। पर इसके कुलक्षण और दुर्भाग्यसे सब कुछ जाता रहा। सब कुछ जाता ही नहीं रहा, बापके गलेमें भी फांस पड़ गयी। अब जीवन-भर इसका पालन-पोषण करना पड़ेगा। हाय! हाय!! यह मेरी कन्या है या शत्रु?

घर आकर पं० दीनदयालने पुत्रीके हाथकी चूड़ियोंको तोड़ दिया। उसके गहने आदि उतार लिये और उसे शास्त्रानुसार विधवा-जीवन बितानेका आदेश दिया। कन्याकी दशा देखकर माता सिर पीट-पीटकर रोने लगी। टोले-महल्लेकी बूढ़ी स्त्रियोंने आकर कहा—राम! राम! मनोरमा नादान बच्ची है। भला तुम्हारे शास्त्र-पुरान-की बात यह क्या जाने?

पं० दीनदयालजीने कहा—धर्मके सामने बच्चे, बूढ़े जवान—सभी समान हैं। विधवाके लिये शास्त्रमें जो व्यवस्था दी गयी है, मैं उससे एक इंच भी पीछे नहीं हट सकता। मैं सबकी व्यवस्था दिया करता हूं, यदि मैं ही शास्त्रका विधान न मानूंगा, तो और कोई क्यों मानेगा? अपनी कन्याके लिये शास्त्रकी मर्यादाका उल्लंघन नहीं कर सकता।

मनोरमाकी मां पुत्रीके ऊपर यह अत्याचार होते सहन न कर सकी। रोते-रोते उसने खाट पकड़ ली और कन्याकी वैधव्य-वेदना न सहन कर सदाके लिये आंखें बन्द कर लीं।

स्वामीके लिये मनोरमा उतना नहीं रोयी, पर मांके मर जानेपर उसने रो-रोकर नदी बहा दी। आजही वास्तवमें उसे संसार सूना दीख पड़ा है। पं० दीनदयाल चौबेके हृदयको भी एक भीषण आघात पहुंचा। प्रौढ़ वयसमें पत्नीकी मृत्युसे उन्हें संसार अन्धकारमय दिखाई देने लगा। संसार उन्हें बोझ-सा जान पड़ा। मनोरमाके यत्नपूर्वक सेवा-टहल करनेपर भी उनका पत्नी-वियोगका दुःख कम नहीं हुआ।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

—:**:—

ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों-त्यों मनुष्यका दुःख भी कम होता जाता है। आज जिसके वियोगमें हमारी छाती फटी जा रही है, जीना कठिन जान पड़ रहा है, कुछ समयके बाद हृदयमें केवल क्षतचिह्नके सिवा और कुछ नहीं रह जाता। आज जो दुःखके भार संसारको दावानल समझकर उसकी विकराल लपटसे जान बचानेके लिये इधर-उधर भागता-फिरता है, कुछ समयके बाद उसे ही संसारसे इतना प्रेम हो जाता है कि उसे वह छोड़ना नहीं चाहता। समयकी गतिका यही नियम है। संसार-चक्रकी चालका यही गूढ़ रहस्य है।

पं० दीनदयाल इस परिवर्तनशील संसारके बाहर नहीं हैं। अतः उनके ही हृदयमें शोक अधिक दिनतक क्यों रहेगा? जब उनके शोककी तीव्रता क्रमशः कम होती गयी, तब वह समझने लगे कि संसारमें कोई अमर होकर नहीं आया है। सबको एक-न-एक दिन मरना होगा। यहां एक आता है तो एक जाता है। जो चला जाता है उसके लिये संसार एक दिन भी चिन्ता नहीं करता। यह सोचते-सोचते उन्हें संसारके तिक्त रसमें फिर एक बार मधुर रसका स्वाद मिला, पर कोई आधार न मिलनेसे पथभ्रान्त हो, वह इधर-उधर घूमने लगे।

पं० दीनदयालने बहुत सोचा-विचारा। इस वयसमें विवाह न कर

वनवास ही उचित है और ऐसा ही शास्त्रका भी आदेश है। बात तो सच है, किन्तु उपयुक्त वन न मिलनेसे आजतक यह कार्य किसीके द्वारा सम्पादित नहीं हुआ। और विशेष जब उनके घरमें एक विधवा कन्या है, तब भला उसको किसके यहां छोड़कर वन जायें? मनोरमाके लिये उन्हें गृहस्थाश्रममें रहना ही पड़ेगा। यदि उन्हें गृहस्थाश्रममें रहना पड़ेगा, तो उन्हे वास्तविक गृहस्थकी नाईं रहना आवश्यक है। गृहिणीके बिना घर और वनमें क्या अन्तर है। गृहिणी ही गृहस्थाश्रमकी शोभा है।

ये सब तो युक्ति और तर्ककी बातें हैं। उसके बाद शास्त्र-रूपी समुद्रका मन्थन करके चौबेजीने दो रत्न निकाले। एक तो—"अस्त्रीको धर्ममाचरेत्।" हाय! हाय!! स्त्रीके बिना धर्म-कार्यमें उनका कुछ अधिकार ही नहीं है। दूसरा "पुत्रार्थे क्रियते भार्या, पुत्रः पिण्डप्रयोजनम्।" उनके तो एक भी पुत्र नहीं। उनके मर जानेपर उनके पुरखे जल-पिण्डके बिना तड़प-तड़पकर व्याकुल हो जायेंगे। महाभारतमें एक कथा है—किसी ऋषिने विवाह न करनेका संकल्प किया था। उन्होंने देखा कि उनके पितर कुशकी जड़ पकड़कर अन्धेरे कुएं में लटक रहे हैं। जल-पिण्डके बिना उनकी मुक्ति नहीं हो रही थी। वे अपने वंशधर उक्त ऋषिको शाप देने जा रहे थे कि उन्होंने शीघ्र ही विवाह कर अपने पितरोंको पतित होनेसे एवं अपनेको पितरोंके शापसे बचा लिया।

पं० दीनदयाल चौबे सब कुछ कर सकते थे, पर, शास्त्रकी मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं कर सकते थे। अतः शास्त्रकी इसी मर्यादा-

की रक्षाके लिये उन्होंने चार सौ नक़द रुपये खर्च कर एक त्रयोदश-वर्षीया बालिकाको अपनी गृहिणी बनाया।

नयी बहूका नाम था सुभद्रा। विवाह होनेके बाद वह कुछ दिनतक अपने पिताके ही घर रही। विवाहके पांच-छः महीने बाद सुभद्रा अपनी गृहिणी पदका अधिकार दखल करने आयी। आते समय वह अपनी माताके दिये हुए कुछ अमूल्य उपदेशोंके सिवा और कुछ साथमें नहीं ले आयी।

चौबेजी इस बालिकाकी विलक्षण बुद्धिमत्ताको देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। सुभद्राने आते ही सबसे पहले उनके बक्सकी चाभी अपने हाथमें ले ली। उसके बाद वह चौबेजीको समझाने लगी कि किस प्रकार तीन पैसेका काम एक पैसेमें किया जा सकता है। केवल समझाने ही नहीं लगी, कार्य-रूपमें करके दिखलाने भी लगी। बालिका मनोरमासे घरका सब काम-काज जब अकेले न हो सकता था, तब उसके पिताने एक लौंडी रख ली थी। खाना-कपड़ा छोड़कर उसे चार आना महीना मिलता। वह चार आना कभी चावल-दालमें, या तीन चार हाथके कपड़े के टुकड़े में मुजरा हो जाता। सुभद्राने आते ही उसे हटा दिया। उसने स्वामीसे कहा—भला गरीब बाम्हनके घर लौंडीका क्या काम? क्या हम लोग राजा बाबूकी बेटी-पतोहू हैं? हमसे मतलब स्वयं सुभद्रा और मनोरमासे था।

राजा बाबूकी बेटी-पतोहू न होते हुए भी यह अवश्य कोई विश्वास नहीं करेगा कि वह अपने हाथसे घरका काम-काज नहीं करती थी। अपने हाथसे काम करनेमें तो गृहिणी-पदका अपमान

हो जाता। यद्यपि वह अपने हाथसे कोई काम नहीं करती थी, पर वह मनोरमासे घरके सब काम इस निपुण भावसे करा लेती थी कि कहीं भी तिलमात्रकी त्रुटि नहीं रहने पाती। इस प्रकार गृह-कार्य अपनी निपुणताका प्रदर्शन कर सुभद्रा आखें मटकाती हुई मन्द-मन्द मुस्कुराहटसे स्वामीके चित्तको विमुग्ध करती हुई बड़े गर्वसे कहती—देखो, बिना लौंडीके घरका काम-काम चल जाता है कि नहीं? जो खाना-कपड़ा और महीना तुम लौंडीको देते थे, हिसाब करके वे मुझे दे देना।

पं० दीनदयालजी पत्नीको गलेसे लगाकर गदगद स्वरमें कहते—सब कुछ तो तुम्हारा ही है, सुभद्रा, मैं तुम्हे क्या दूंगा?

सुभद्राकी इस गृह-कार्य-निपुणताको देखकर पं० दीनदयाल कभी कभी सोचते—भगवानने मेरे ऊपर बड़ी दया दिखलाकर ऐसी सुन्दरी गृहिणी मुझे दी है।

सुभद्रा मनोरमासे छोटी थी; इसलिये वह उसे मां नहीं कहती, छोटी बहू कहती थी। एक दिन इसीलिये मनोरमाका तिरस्कार करके सुभद्राने कहा—मुझे छोटी बहू क्यों कहती हो? मां क्यों नहीं कहती? क्या मैं मां कहलाने योग्य नहीं हूं?

सुभद्रा किसी भी अंशमें उसकी स्नेहमयी माताके योग्य नहीं थी, यह जानते हुए भी मनोरमाने मुंह खोल कर कुछ नहीं कहा; साथ ही उसे मां कहकर भी नहीं पुकारा। उससे कहनेमें उसका गला रुक-रुक जाता था। मनोरमाके इस गर्वपूर्ण आचरणसे सुभद्राका जी जल उठा।

अब मनोरमाको घरके कामोंसे एक क्षणकी भी फुरसत नहीं मिलती। बहुत तड़के ही उठकर वह गोबरसे आंगन लीपती, घरके सब जूठे बरतन मांजती। उसके बाद मुंह-हाथ धो स्नान कर घरके ठाकुरजीकी पूजा करती, फिर रसोई बनाने जाती। पिता और विमाता-के भोजन करनेके बाद आप भोजन करती। भोजन करनेके बाद चौका-बासन साफ करती। इतनेमें सूर्यदेव पश्चिमकी ओर अस्ता-चलको पहुंच जाते।

शामको दुलारीके साथ कुएंपर जल लाने जाती। जल लाकर फिर घरके कामोंमें लग जाती। यदि किसी तरह उसे थोड़ा-सा भी अवकाश मिल जाता, तो वह दुलारीके पास जाकर बैठती।

परिश्रम करनेके बाद मनोरमाका मन किंचित भी कातर नहीं होता था। पर इतनी मिहनत करनेपर भी यदि किसी दिन विमाता-के मुखसे एक भी स्नेहमय शब्द सुनती तो अपनेको धन्य समझती थी। पर ऐसा उसके भाग्यमें लिखा नहीं था। इसके बदले लगा-तार वाक्य-बाणोंकी बौछारसे उसका हृदय टूक-टूक हो जाता। सब दिन उसके भाग्यमें मुट्ठी भर अन्न खाना भी नहीं लिखा था। कितनेही दिन तो उसे निराहार ही सो जाना पड़ता था।

काम-काज खतम करके जब मनोरमा भोजन करने बैठती, तब प्रायः दोपहरके बाद ही सुभद्रा आंख मलती हुई सोकर उठती। उठते ही पूछ-ताछ करने लगती कि घरका कौन-कौन काम हुआ है, कौन-कौन बाकी है। किसी-किसी दिन मनोरमाके आगे परोसी हुई थालीको देखकर मन-ही-मन बहुत कुढ़ती और कहती—राम-

राम ! कितना बड़ा इसका पेट है । इतना खाना आदमी खाता है या राक्षस ? राक्षसी न होती तो इसकी यह दशा ही क्यों होती ?

बात तो वह अपने आप ही कहती ; पर इस ढंगसे कहती कि मनोरमाको सुननेमें कोई रुकावट नहीं पड़ती । सुनकर मनोरमाके हाथका कौर हाथमें ही रह जाता । आंखोंके आंसुओंसे थालीका अन्न भीग जाता । मुंहका अन्न मुहमें ही रह जाता, किसी तरह भी गलेके नीचे नहीं उतरता । उस दिन बचे हुए भातको मनोरमा कुत्ते-बिल्लीको खिला देती । क्षुधाकी ज्वाला दुःखके प्रचण्ड दावानलके साथ मिलकर उसकी छातीको जलाकर राख कर देती ।

दुःख, दैन्य, निराशा और वेदनासे अत्यन्त पीड़ित होकर जब मनोरमा व्याकुल हो उठती, तब वह दुलारीके पास जा बैठती ।

धूपसे जले हुएके लिये जैसी वट-वृक्षकी छाया होती है, प्यासेके लिये जैसा निर्मल शीतल जल होता है, उसी तरह मनोरमाके लिये दुलारी थी । मनोरमा जितनी देरतक दुलारीके पास बैठती, उतनी देरतक वह सब दुःख भूल जाती, सान्त्वनाकी एक शीतल छायामें उसके नैराश्य-दग्ध प्राण कुछ देरके लिये जुड़ाते । जितना समय मनोरमाको दुलारीके पास बैठनेको मिलता, वह उसके लिये बड़ा ही मूल्यवान होता । इसके लिये यदि सुभद्रा उसे कुछ कहती-सुनती भी, तो उसके तिरस्कारको वह सहर्ष अपने माथेपर चढ़ा लेती थी ।

मनोरमाका कष्ट देखकर दुलारीकी सासने पं० दीनदयालसे कहा था—पण्डितजी, नन्हीं बालिकासे इतना काम क्यों करवाते हो ? बेचारी सारा दिन काम करते-करते मर जाती है ।

पं० दीनदयालने एक लम्बी चौड़ी युक्तिपूर्ण वक्तृता देकर वृद्धाको समझा दिया कि विधवाके लिये शारीरिक परिश्रम अत्यावश्यक है। इस परिश्रमके द्वारा ही उसका मन शुद्ध रहेगा, विचलित नहीं होगा, चुपचाप बैठे रहनेसे उसके मनमें नाना प्रकारके कुविचार उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसा युक्तिपूर्ण उत्तर सुनकर वृद्धा और कुछ न कह सकी, केवल एक आह भरकर रह गयी। पं० दीनदयालसे वृद्धाके मनोरमाके प्रति सहानुभूति प्रकट करनेकी बात सुनकर सुभद्राने जो चुन-चुनके सुनायी, सौभाग्यसे वह वृद्धाके कानोंतक नहीं पहुंची, नहीं तो उसी दिन दोनों घरोंमें महाभीषण संग्राम छिड़ जाता।

पर मनोरमाके लिये वह दिन कुशलसे नहीं बीता। सुभद्राने यह समझकर कि यह घर-घर मेरी बुराई करती फिरती है, उस दिन मनोरमापर ऐसे वाक्य-वाण चलाये कि उसकी हड्डी-हड्डीमें छेद हो गये। पर मनोरमाने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह बैठी-बैठी केवल अपनी स्वर्गगता जननीको याद कर रही थी और सोचती थी कि यदि आत्महत्या पाप है तो और कौनसा उपाय करूं ?

इसके बाद जब सुभद्रा एक सन्तानकी माता हुई तब तो मनोरमाकी यन्त्रणा चरम सीमातक पहुंच गयी। जब दुःख असह्य हो उठा, तब मनोरमाने सोचा—मैं यहां किसलिये दुःख भोग रही हूं ? क्यों नहीं अपने ससुरके घर चली जाती ? वहां तो मुझे खाना-कपड़ा मिलेगा ही।

दुलारीने यह सुना तो कहा—ससुरके घर क्यों जाओगी, सखी ?

मनोरमाने हंसकर उत्तर दिया—जरा एक बार देख तो आऊं कि वह जगह यमलोकसे अच्छी है या बुरी।

दुलारीने फिर उसे कोई बाधा नहीं दी। तब मनोरमाने पिताके सामने यह प्रस्ताव पेश किया। पं० दीनदयालने देखा कि मनोरमाका विचार बुरा नहीं है। यदि कुछ दिन वहां रहकर अपने खाने-कपड़ेका बन्दोबस्त करके आ सके तो इसमें मेरा लाभ ही है, हानि नहीं।

पं० दीनदयालजी राजी हो गये; पर सुभद्रा इससे सहमत नहीं थी। उसने स्नेहकी पराकाष्ठा दिखलाकर कहा—भला ऐसा भी कभी हो सकता है? आखिर वह मेरी ही बेटी है न? उसे कहां भेज दूं? वह तो हम लोगोंका जूठन खाकर भी अपना दिन गुजार लेगी।

असल बात तो यह थी, कि मनोरमाके चले जानेपर घरका काम-काज कौन करेगा?

किन्तु मनोरमाकी जिदके सामने सुभद्राकी आपत्ति न ठहर सकी। पं० दीनदयालने कन्याको उसकी ससुराल भिजवा दिया। बरियारपुरसे मनोरमाकी ससुराल श्रीनगर दो कोसपर ही था।

मनोरमाके चले जानेपर सुभद्राको ही भोजन बनाना पड़ा। धुएंके मारे उसकी आंखें लाल हो गयीं। पं० दीनदयालजी स्नानोपरान्त ठाकुरजीका पूजन कर बाहर निकले तो देखा कि सुभद्रा रसोई-घरके दरवाजेपर बैठी बड़बड़ा रही है। पंडितजीके पूछनेपर कि बात क्या है? सुभद्राने कहा—बात क्या है? बेटीको तो दुलार करके भेज दिया, अब रसोई कौन बनायेगा?

पं० दीनदयालने हंसते हुए कहा—चलो, मैं रसोई बना लेता हूं। यह कहकर वह रसोई-घरमें चले गये।

बारहवां परिच्छेद

मनोरमाके देवर देवीदत्त अपनी भौजाईसे एक प्रकार निश्चिन्त ही थे, किन्तु सहसा उसकी उपस्थितिसे उन्हे कुछ चिन्ता हुई। उनकी स्त्री मायाने अपने मनमें कहा—अरे राम! यह विपद कहांसे आई?

टोले-महल्लेकी स्त्रियोंने मनोरमाको देख कर कहा—भला! बेचारे मां बाप कबतक खिलावें? आखिर तो यही इसका अपना घर है। किसीने कहा—अहा! साक्षात् लक्ष्मी है! जैसा रूप है वैसा ही गठन, किन्तु भाग्यकी खोटी है।

पड़ोसिनोंकी इस समालोचनाको सुनकर मनोरमा लाजके मारे गड़ती चली जा रही थी और मायाके सारे शरीरमें आग लग रही थी। पर प्रतिवाद करनेका कोई उपाय न देखकर वह चुप थी।

एकाएक अपरिचित घरमें आकर मनोरमा पहले कुछ सकुचायी; किन्तु क्रमशः उसका संकोच दूर हो गया। उसके बाद वह अपने ही मनके अनुसार काम करने लगी। जब मायाने देखा कि यह विपद यहांसे टलनेकी नहीं, तब उसने घरके सब काम-काजका भार एक-एक करके मनोरमाके कन्धेपर लाद दिया और स्वयं अपने बाल-बच्चोंके ही लालन-पालनमें अपना समय लगाने लगी। यद्यपि माया पदमें मनोरमासे छोटी थी, पर उम्रमें बड़ी होनेके कारण वह उसे बहिन कहती और माया मनोरमाको बहू कहकर पुकारती थी।

जो कुछ जमीन जायदाद थी उससे एक परिवारका निर्वाह मजेमें

हो सकता था। पर इसीलिये देवीदत्त अपाहिजोंकी तरह बैठकर खाना पसन्द नहीं करते थे। वह अपने गांवके पास ही बसन्तपुरके एक जागीरदारकी कचहरीमें मुहर्रिरका काम करते थे। रोज सुबह सात बजे ही खा-पीकर जाते थे और शामको घर वापस चले आते थे। दिनका भोजन बाबूसाहबके ही घर होता था। तनखाह तो सिर्फ आठ रुपया मिलती थी; पर महीनेमें पन्द्रह-बीस रुपयेकी आमदनी हो जाती; घरमें तीन बाल-बच्चे और एक स्त्री थी। खेत जोतनेके लिये दो बैल और दूध खानेके लिये एक गाय थी। पशुओंकी सेवाके लिये एक नौकर था। इन सबके सिवा मायाका भाई भी उनके ही घर रहता था। नाम था—गोपीनाथ।

गोपीनाथ गांवके अपर प्राइमरी स्कूलकी चौथी कक्षातक पढ़ चुका था। जब वह पढ़ता था तभी उसके मां-बाप मर गये। घरमें कुछ सम्पत्ति:थी नहीं और न आगे-पीछे कोई उसका देखनेवाला ही था। इसलिये बहिनके घरमें आकर उसने आश्रय लिया। यहां आकर वह गाने-बजाने, ताश-जुआ खेलने और कभी गांजेका दम लगानेमें अपना समय बिताने लगा। घरके काममें उसे बाजारसे सौदा लाना पड़ता था और चरवाहेके बीमार पड़नेपर कभी-कभी गाय-बैलोंकी देख-भाल भी किया करता था; पर गोपीनाथ इसको काममें नहीं गिनता था। माया कभी-कभी भाईको बुरा-भला भी कहती थी, उपदेश देती थी; पर गोपीनाथ बहिनकी बात एक कानसे सुनकर दूसरेसे निकाल देता था। खाना-पीना मौज उड़ाना यही उसका मूल मंत्र था।

मनोरमा जिस आशासे यहां आयी थी, वह पूरी न हुई। विमाताके वाक्यवाणोंसे मायाके वाक्यवाण कम तेज नहीं थे, पर कभी-कभी तो वे मनोरमाके हृदयमें असह्य वेदना भर दिया करते थे। अन्तमें मनोरमाने अच्छी तरह सोच-समझ लिया कि संसारमें विधवाको कहीं भी सुख नहीं है। इसलिये मन मारकर इसे कष्ट सहन करना ही पड़ेगा।

देवीदत्त भौजाईका रूखा व्यवहार देखकर कभी-कभी मायाको शान्त होनेका भी उपदेश देते; पर उससे मायाकी उग्रता कम न होकर और भी विकराल रूप धारण कर लेती थी। असल बात तो यह थी कि देवीदत्त अपने घरमें युवती सुन्दरी विधवाको रखकर निश्चिन्त नहीं रह सकते थे। यद्यपि आजतक किसीने देवीदत्तके चरित्रमें कुछ दोष न देखा था, तोभी माया पुरुषोंका कम विश्वास करती थी। मनोरमाकी अनुपम सुन्दरता एवं उसके यौवन-लहरें देवीदत्तके हृदयमें न सही, पर मायाके हृदयमें एक भीषण उथल-पुथल मचा रही थीं। माया पग-पगपर आशङ्का करती थी कि उसका सर्वनाश निकट है। इसपर जब देवीदत्त भाईकी स्त्रीके प्रति सद्‌व्यवहार करनेका उपदेश देते, तो मायाका सन्देह और भी दृढ़ हो जाता। उसकी क्रोधाग्नि और भी प्रज्ज्वलित हो उठती। यद्यपि उस अग्निकी लपटें देवीदत्तको स्पर्श नहीं करती थीं, पर बेचारी मनोरमाको तो जलाकर राख कर दिया करती थीं।

देवीदत्त केवल दयावश ही मनोरमाके प्रति सद्‌भाव प्रदर्शित करनेके लिये नहीं कहते, वरन् उन्होंने सोच-समझकर स्थिर किया था

कि कुछ भी हो, बड़े भाईकी स्त्री है, विधवा है, उसका तिरस्कार करना ठीक नहीं है। तिरस्कार करनेसे लोग क्या कहेंगे ? विशेषतः वसीयतनामेमें उसके भरण-पोषणकी भी व्यवस्था लिखी थी। अतः यदि वह उसका दावा कर बैठे अथवा दुष्ट आदमियोंके बहकानेसे अदालत तक पहुंच जाये, तो हर महीने उसे नगद रुपये गिनकर देने पड़ेंगे। ऐसी अवस्थामें यदि दो-चार मीठी बातोंसे भारी गड़बड़ीकी आशङ्का मिट सकती है तो इसमें हानि ही क्या है ? वह बेकार बैठकर तो खाती नहीं है।

माया यह सब बातें नहीं सोचती थी। वह अपने हृदयकी आग-से ही जला करती थी और मनोरमाको भी जलाती थी। शान्त-प्रकृति देवीदत्तने जब देखा कि उनके उपदेशोंका कुछ भी फल नहीं होता है, बल्कि उसका उलटा होता है तब उन्होंने मायाको कुछ कहना छोड़ दिया। आपसमें वाद-विवाद बढ़ानेको उनकी प्रकृति नहीं थी और न साहस ही था। अतः अब मायाके काममें रोक टोक करनेवाला कोई नहीं रहा। हां, गोपीनाथ कभी कभी मनोरमाका पक्ष लेकर बहिनको दो चार बातें कह देता था, पर माया उसकी बातोंकी ओर ध्यान नहीं देती थी।

गोपीनाथने जिस दिन मनोरमाको देखा था उसी दिनसे उसके मनमें विचित्र तरंगें हिलोरे मार रही थीं। उसने अपने गुप्त कटाक्षसे कई बार अनेक स्त्रियोंको देखा था, पर मनोरमा जैसा एकका भी मुख सुन्दर नहीं था। मनोरमा जैसा शान्त, स्थिर एवं मधुर सौन्दर्य किसी स्त्रीमें नहीं था। वह मुग्ध दृष्टिसे मनोरमाका मनोरम सौन्दर्य

देखता, पर उसका वासनाकलुष हृदय आप-ही-आप संकुचित हो जाता था। मनोरमाके मुखको देखनेके लिये उसके हृदयमें प्रबल आकांक्षा होती थी, मनोरमाके मुख उठाते ही गोपीनाथकी आंखें भयसे नीची हो जातीं। अनाथा विधवाके दुःखमलिन मुखमण्डलमें उसे संसारका सौन्दर्य दिखाई देता। वह अपने मनमें कहता—ऐसे सुन्दर चन्द्रमुखकी दुःखकी कालिमा क्या नहीं मिटायी जा सकती? क्या इस दुःखिनी विधवाका दुःख दूर नहीं किया जा सकता? परायेके दुःख दूर करनेकी यह भावना गोपीनाथके हृदयमें यह सर्वप्रथम उदय हुई। पता नहीं, कहांसे और इस भावका उसके हृदयमें आगमन हुआ।

मनोरमाको देखते ही गोपीनाथके हृदयमें एक प्रकारकी असह्य वेदना होने लगती। जब मायाके तिरस्कारसे व्यथित होकर मनोरमा एक कोनेमें जाकर चुपचाप खड़ी रहती, उसकी आंखोंसे टपाटप आंसुओंकी बूंदें गिरने लगतीं—उस समय गोपीनाथकी इच्छा होती थी कि मनोरमाके पास जाकर सान्त्वना देते हुए कहूं, "रोओ मत, मनोरमा!" किन्तु लज्जावश वह ऐसा नहीं कर सकता था। केवल बहिनके ऊपर मन-ही-मन खूब बिगड़कर चुप रह जाता। जब अत्यन्त असह्य हो उठता तब कभी कभी बहिनको दो चार खरी खोटी सुना देता; पर उसके फलस्वरूप बहिनकी क्रोधाग्निको और भी अधिक प्रज्ज्वलित होते देखकर वह वहांसे भाग जाता।

किन्तु मनोरमा गोपीनाथकी इस सहानुभूतिको प्रसन्न चित्तसे नहीं ग्रहण कर सकती थी। इस निष्ठुर संसारमें कमसे-कम एक हृदय

अपने लिये व्यथित देखकर यद्यपि एक प्रकारकी प्रफुल्लता होती, तथापि वह उससे सन्तुष्ट नहीं होती, बल्कि इसके लिये वह गोपीनाथके ऊपर भयानक रूपसे क्रोधित हो उठती। वह विधवा थी, संसारके सभी दुःख-कष्ट भोगनेके लिये ही उसका जन्म हुआ था, तब यह एक आदमी उसके प्रति क्यों सहानुभूति प्रकट करता था? गोपीनाथ उसका कौन होता था? मनोरमा तो उसकी सहानुभूति चाहती भी नहीं थी।

मनोरमा यह नहीं जानती थी कि सहानुभूति चाहनेसे नहीं मिलती, वह बिना मांगे ही अपने आप आ जाती है।

तेरहवां परिच्छेद

घरके और सब कामोंके साथ-साथ रसोई-घरका भार भी मनोरमाके ही ऊपर था। सुबह शाम दोनों वक्त उसे रसोई बनानी पड़ती। माया केवल ऊपरसे उसकी सहायता कर दिया करती थी। देवीदत्त शामको कचहरीसे थके-मांदे घर आते। झटपट हाथ-मुंह धोकर खा-पीकर सोने चले जाते। माया भी उनके भोजन करनेके बाद ही खा-पी लेती, बच्चे तो शाम होनेके पहले ही खा-पीकर सो जाते। केवल बाकी रह जाता था गोपीनाथ। वह टोले-महल्लोंमें किसीके दरवाजेपर गप्प लड़ाता रहता, अधिक रात हो जानेपर वह खानेके लिये घर आता। इसीलिये उसका भोजन ढंककर रख दिया जाता

था ; किन्तु मनोरमाके आनेके बादसे उसके इस नियममें व्यतिक्रम हो गया था। गोपीनाथकी प्रतीक्षामें मनोरमाको बैठे रहना पड़ता। उसके आनेपर उसे खिला-पिलाकर वह स्वयं खाती। उसके बाद कभी आधी रातको, कभी पिछली रातको सोने जाती। तबतक गांवका चौकीदार दो बार हांक लगा जाया करता था।

मनोरमाको कभी-कभी इससे बड़ा कष्ट होता था। वह रसोई-घरमें ही आंचल बिछाकर लेट रहती। गोपीनाथ आकर जब उसे पुकारता तो वह उठकर भोजन परोसने जाती। किन्तु दिन भरके परिश्रमसे पांव उठानेकी उसकी इच्छा नहीं होती थी। शरीर शिथिल हो जाता था। सिर चकराने लगता था। गोपीनाथको मनोरमाके कष्टकी बात मालूम हो गयी। उसने एक दिन कहा—मेरे लिये क्यों बैठी रहती हो मनोरमा, मेरा भोजन ढक कर तुम सो जाया करो।

मनोरमाने कहा—भला यह कैसे हो सकता है ?

मनोरमाकी बात सुनकर गोपीनाथने कहा—क्यों नहीं हो सकता ? मेरे लिये तो बहिन सदा ही भोजन परोसकर ढककर रख देती थी।

मनोरमाने कहा—मैं ऐसा नहीं कर सकती।

उसी दिन गोपीनाथने निश्चय किया कि अब अधिक राततक बाहर नहीं रहूंगा। पर यह उसके मनकी तो बात नहीं थी। पांच आदमियोंसे गप-शप करते कराते, सुरती-तम्बाकू खाते-पीते, कितनी रात चली जाती थी, यह उसे मालूम ही नहीं होता था। अतः फिर वही पुराना दस्तूर जारी रहा।

एक दिन बाहर जानेके समय गोपीनाथ कहकर गया कि आज

मेरी तबीयत ठीक नहीं, रातको कुछ नहीं खाऊंगा। दो-चार दिनके बाद फिर एक दिन अस्वस्थताका बहाना करके वह यह कहकर बाहर चला गया कि आज भी खाने नहीं आऊंगा। मनोरमा गोपीनाथके न खानेका कारण समझ गयी। उसे बड़ी लज्जा मालूम हुई। मायाने अधिक भात बचा देखकर कहा—इतना भात क्यों बच गया?

मनोरमाने कहा—अभी गोपीनाथ खानेको हैं।

माया—वह तो कहकर गया है कि मैं तो नहीं खाऊंगा।

मनोरमा—नहीं, वह भोजन करने आयेंगे।

'हुँ' कहकर माया सोने चली गयी।

कभी-कभी एक साधारण-सी बातके भीतर बड़ा गम्भीर अर्थ छिपा रहता है। मायाके इस 'हूं' में जो गम्भीर अर्थ छिपा था, उसे मनोरमा कुछ कुछ समझ गयी। उसे समझकर उसने मनमें कहा—चूल्हेमें जाय उसका खाना-पीना, मैं जाकर सो रहती हूं। फिर मनमें सोचा, हाय! हाय! केवल मेरे लिये एक ब्राह्मण-संतान रातभर भूखा रहेगा। उसके बाद उसने स्थिर किया कि गोपीनाथको ऐसी कड़ी-कड़ी बातें सुनाऊंगी, कि फिर कभी वह ऐसा काम न करेगा।

उस रातको भी घर लौटनेपर गोपीनाथने देखा कि मनोरमा पहलेकी भांति आंचल बिछाकर रसोई-घरमें लेट रही है। ताकमें किरासिन तेलकी डिबिया टिमटिम जल रही थी। गोपीनाथने पुकारा—मनोरमा?

मनोरमा झटपट उठकर बैठ गयी। गोपीनाथने कहा—अबतक पड़ा हो?

मनोरमाने दोनों हाथोंसे आंख मलते हुए कहा—तुम्हे खिलानेके लिये ही तो बैठी हूं ।

गोपीनाथ—ओह ! मैं तो कह गया था कि खाने नहीं आऊंगा ।

मनोरमा—मैं तुम्हारे इस तरह कहकर जानेका कारण समझ गयी थी ।

मनोरमाकी बात सुनकर गोपीनाथका मुख प्रफुल्लित हो उठा। गोपीनाथने हर्षोत्फुल्ल स्वरमें पूछा—तुमने क्या समझा है ?

मनोरमाने कहा—मैंने जो कुछ भी समझा हो । मेरे लिये किसीको उपास नहीं रहना पड़ेगा ।

मनोरमाने कुछ क्रोधित होकर यह बात कही । गोपीनाथने भी अभिमान-क्षुब्ध स्वरमें कहा—मैं भी कहता हूं, मेरे लिये किसीको कष्ट सहकर बैठना नहीं पड़ेगा ।

मनोरमाने बायें हाथसे चिरागको उठाते हुए खिन्न होकर कहा—क्या सचमुच तुम लोग मुझे यहा रहने नहीं दोगे ? आखिर मुझे गलेमें फांसी लगानी ही पड़ेगी !

गोपीनाथने भयभीत होकर कहा—क्यों मनोरमा ? क्या हुआ ?

मनोरमाने रुद्ध-कंठसे कहा—मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? तुम मेरे लिये यह सब क्यों कर रहे हो ?

मनोरमाकी आंखोंसे टपटप आंसू गिरने लगे । गोपीनाथने अपराधीकी नाई कातर स्वरमें कहा—मनोरमा, मुझे माफ करो, मैं कुछ भी नहीं समझ सकता । चलो, भात परोस दो ।

मनोरमाकी आँखोंसे अब भी आंसुओंकी धारा बह रही थी । वह

चिरागको रखकर दाहिने हाथकी उल्टी पीठसे आंखोंको पोछने लगी।
गोपीनाथने कहा—मनोरमा, चुप हो। अब मैं कभी ऐसा काम नहीं
करूंगा।

"पैरों पड़ रे अभागा, पैरों पड़!"

गोपीनाथने चौंककर पीछे देखा कि बहिन खड़ी है। मायाने
गरजकर कहा—अरे अभागा, यही तेरी तबीयत खराब है? इसीलिये
आज नहीं खायेगा? इसीलिये रात दिन मनोरमा-मनोरमाकी रट
लगाये रहता है?

गोपीनाथ पीछे हटकर खड़ा हो गया। किञ्चित् क्रोधित होकर
उसने कहा—तुम क्या कह रहे हो बहिन!

मायाने चिल्लाकर कहा—मैं अपना सिर कह रही हूं। और
कहती हूं। इस अभागिनके गलेमें फांसी लगानेके लिये, रस्सी भी
नहीं मिलती। अरी मुँह जली, अपने सगे-सम्बन्धीको भी न छोड़ा!
क्या मेरा भाई और तेरा भाई दो हैं?

मनोरमाके हाथसे मिट्टीका चिराग गिर पड़ा। वह सन्न होकर
खड़ी रही। मायाने गरज गरजकर सारे घरको कंपाते हुए कहा—
क्यों खड़ी है? जाकर भात क्यों नहीं परोस देती? जारे अभागा
अपनी दुलारीके दुलारका भात खा!

गोपीनाथने एक लम्बी सांस लेकर कहा—अब अधिक मत कहो,
बहिन! तुम्हारा अन्न पापका अन्न है। अब तुम्हारा अन्न अपने
मुखमें न डालूंगा।

मायाने गोपीनाथके मुँहके पास हाथ चमकाते हुए कहा—तू तो

ऐसा कहेगा ही रे, गोपिया! अब तो घरमें साक्षात् पुण्यवती आयी है न, इसलिये मेरा अन्न पापका अन्न हो गया। तुम दोनोंको डूब मरना चाहिये; किन्तु देखना, यदि कल ही इस पुण्यवतीको घरसे निकाल न दूं तो मेरा नाम माया नहीं।

गोपीनाथ अपनी बहिनकी ओर तीक्ष्ण दृष्टिसे देखते हुए अपने सोनेके घरमें चला गया।

मायाके चिल्लानेसे देवीदत्तकी नींद टूट गयी। उन्होंने खिड़कीके पास आकर पुकारा—अजी ओ! क्या हुआ है? घरमें डाका तो नहीं पड़ रहा है?

मायाने उस ओर देखते हुए तीव्र स्वरमें कहा—जैसी सुहागिनको घरमें लाकर पाल रखा है, उससे डाका पड़नेमें अब देर नहीं है।

'आह' कहकर देवीदत्तने खिड़की बन्द कर दी। मनोरमा थर-थर कांपती हुई सोने चली गयी।

दूसरे दिन मायाने एक औरतके साथ मनोरमाको उसके बापके घर भिजवा दिया। मनोरमाके चले जानेके थोड़ी ही देर बाद गोपीनाथ भी अपना छाता-कुरता लेकर वहांसे चला गया। जाते समय उसने बहिनको प्रणाम किया, पर बहिनने उसकी ओर देखा तक नहीं।

देवीदत्तने कचहरीसे लौटनेपर मायासे पूछा—गोपी कहां चला गया?

मायाने कहा—रानीजी चली गयीं तो राजाजी कैसे ठहरें।

देवीदत्तने झुंझलाकर कहा—तुम भी क्या बकती हो? गोपीनाथ तो तुम्हारा भाई है न?

माया—ऐसे भाईको मैं झाड़ू लगाती हूं।

देवीदत्त—छिः छिः तुम्हारा—मन साफ नहीं है।

मायाने मुंह विचकाकर व्यंगसे कहा—हां, मेरा मन साफ कैसे होगा? मैं सोहल वर्षकी छोकरी तो नहीं हूं?

देवीदत्तने मुस्कुराकर कहा—फिर सोहल वर्षकी होनेकी साध है क्या?

मायाने कुछ नहीं कहा। क्रोधके मारे गुर्राती हुई वह रसोईघरमें चली गयी।

चौदहवां परिच्छेद

"सखि, कहां हो सखि?"

"आओ, सखि, अभी अभी तुम्हारी ही याद कर रही थी। सोचती थी; मेरी प्यारी सखी अभीतक आयी क्यों नहीं?"

"सोचनेकी क्या बात थी सखि, मैं तुम्हारे सिवा और किसीके पास तो जाती नहीं।"

"तो भी तुम्हारे बिना मन नहीं मानता।"

मनोरमाने आकर दुलारीको गलेसे लगा लिया। इसके बाद दोनों सखियां बड़ी देरतक हंसती रहीं। हंसते-हंसते दुलारी मनोरमाके मुखकी ओर देखकर सहसा रुक गयी। कुछ विस्मितहोकर उसने कहा—यह क्या? तुम्हारा मुंह क्यों सूखा है सखि!"

मनोरमाने पूर्ववत् हंसते हुए कहा—मेरे भाग्यमें सूखा ही सुख लिखा है सखि! आज मैंने कुछ खाया नहीं है।

दुलारीने मनोरमाका गाल दबाते हुए गम्भीर स्वरमें कहा—काठ जैसे सूखे होठोंपर यह हंसी अच्छी नहीं लगती।

मनोरमाने फिर हंसते हुए कहा—इससे तुम्हारी भी अरुचि हो गयी। तब मैं कहां जाकर रहूं सखि!"

"चूल्हेमें!"

यह कहकर दुलारी चली गयी।

वह रसोई घरमें चूल्हेपर दूध औंट रही थी। दुलारीने अभी भी गाय पाल रखी थी। दूधके लिये नहीं, बल्कि स्नेहवश। गाय भी अकृतज्ञ नहीं थी।

दुलारीके स्नेहके बदलेमें वह प्रति दिन थोड़ा-थोड़ा दूध देकर उसके प्रति अपने प्रेमका परिचय देती थी।

दुलारीने एक कटोरेमें सब दूध ढालकर मनोरमाके सामने लाकर रख दिया और कहा—तुम्हे मेरे सिरकी कसम है, इसे पी जाओ।

मनोरमाने कहा—कसम क्यों दिलाती हो? लो, मैं दूध पी लेती हूं।

मनोरमाने दूध पीकर और तृप्तिका एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—जानमें जान आयी? सच कहती हूं बहिन, भूखकी ज्वालासे सारा शरीर जल रहा था। अच्छा सखि, विधवाका सर्वस्व तो चला जाता है, केवल भूख-तृष्णा क्यों नहीं जाती?

दुलारीने मुस्कुराकर कहा—इसे विधाताकी भूलके सिवा और क्या कहा जा सकता है? आज फिर क्या हुआ है?

मनोरमा—जो रोज होता है वही।

दुलारी—क्यों ?

मनोरमा—कारण तो मामूली नहीं है। छोटी मां खा-पीकर बच्चेको लेकर सो रही थीं। अकस्मात् बच्चा खाटपरसे गिर पड़ा। गिरते ही वह रोने-चिल्लाने लगा। उसकी चिल्लाहटसे छोटी मांकी नींद टूट गयी। बस क्या था, लगीं मुझको जली-कटी सुनाने—यह मेरे बच्चेको आंखसे देखनातक नहीं चाहती। दिन-रात उसकी मौत मनाया करती है। यदि कोई मरता भी रहेगा तो यह भूलकर भी उस ओर नहीं देखेगी। इसी तरहकी न जाने कितनी बातें सुना डालीं। मैं अभी खाने ही बैठी थी, पहला कौर भी मुंहमें नहीं डाला था। रोज मैं जैसे चुपचाप सुना करती थी, आज भी वैसे ही चुप-चाप बैठी उसकी बातें सुन रही थी और मनमें कह रही थी, हे भगवान्! मेरे लिये कब मौत भेजोगे ? इसी समय बाबूजी भी उसके स्वरमें स्वर मिलाकर बोल उठे—यह अपने ही पेटकी चिन्तामें दिन-रात लगी रहती है, इसे क्या पड़ी है, चाहे कोई मरे या जीये, इसे तो अपने भोजनसे मतलब है। बहिन, बाबूजीकी बात मुझसे सही नहीं गयी। मैं थालीका भात थालीमें ही छोड़कर तुम्हारे यहां चली आयी।

दुलारीने दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—धन्य हैं ऐसे मां-बाप !

मनोरमाने कहा—मां कहां है, बहिन ! मां होती तो आज......"

मनोरमाकी आंखोंमें जल भर आया। गलेसे आवाज नहीं निकल सकी। दुलारीने कहा—सच कहती हो, वह सौतेली मां है न ; किन्तु बापका भी कैसा कठिन कलेजा है ?

चौदहवां परिच्छेद

मनोरमाने आंसू पोंछते हुए कहा—और उससे भी अधिक विधवाका कलेजा कठिन है।

वेदनाके मारे मनोरमाकी छाती फटी जा रही थी।

दुलारीने कहा—अब क्या करोगी बहिन! वह तो बाहर नहीं निकाला जा सकता।

मनोरमाने कहा—किन्तु बहिन, कभी कभी मेरी ऐसी इच्छा होती है कि कलेजेको बाहर निकालकर फेंक दूं।

दुलारी—दूर हो अभागिन! न जाने पूर्व जन्मके कितने पापोंका फल तो इस जन्ममें भोग रही हो, अब क्या फिर आत्मघात करके और पाप कमाना चाहती हो?

मनोरमा--मैं तो समझती हूं इससे और अधिक कष्ट नहीं होता।

दुलारीने क्रोधित होकर कहा—चुप रह, क्या ऐसी बात भी मुंहसे निकाली जाती है? ऐसी बात तो सोचना भी महापाप है।

मनोरमाने कहा—अच्छा, महापाप है तो जाने दो। अब थोड़ी देर रामायण पढ़कर सुनाओ।

दुलारी ताकपरसे रामायण लेकर पढ़ने बैठी। मनोरमाने वही कथा निकाली जहांपर सीताजी अशोक बनमें बैठी हैं और राक्षसियां उन्हें डरा रही हैं। दुलारी सुन्दरकाण्ड निकालकर पढ़ने लगी। सीताजीकी रामवियोगकी वेदनाकी कथा सुनकर मनोरमाकी आंखोंसे आंसुओंकी धारा बह रही थी। दुलारीकी आंखोंमें भी जल भर-भर आता था।

पन्द्रहवां परिच्छेद
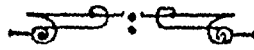
दुलारीका दिन अब एक प्रकार कष्टसे बीतने लगा। असामी लोग उसका खेत अधबटैयेपर जोतते थे। कुछ दिन तो वे नियमित रूपसे खेतकी आधी फसल दुलारीके घर पहुंचा आते थे, पर उसे स्त्री समझकर वे कुछ ढीले पड़ गये। अब आधी फसलकी कौन कहे, आधीकी भी आधी कोई नहीं पहुंचा आता। दुलारी यह सब समझती थी, पर समझकर भी चुप बैठी रहती। एक बार एक असामी जब बहुत कम फसल ले आया तो दुलारीने उसे कुछ कहा-सुना। उससे खेत छुड़ा लेनेका भय दिखाया। पर उस असामीने कहा—मुझसे खेत कौन छुड़ा सकता है? मैंने बिसेसर तिवारीसे कई सालका पट्टा लिखा लिया है। वही इसके मालिक हैं। अगर आप बहुत जोर-जुलुम दिखायेंगी तो जो कुछ आपको दे रहा हूं वह भी नहीं दूंगा। बिसेसर तिवारीको मनिआर्डरसे लगान भेज दूंगा।

दुलारी क्या करती? चुप हो रही।

दुलारी घरमें अकेली ही थीं, पर उसे दो पेटकी खुराक जुटानी पड़ती थी। दिन तो वह किसी प्रकार काट लेती थी, पर रातको अकेली सोनेका उसे साहस नहीं पड़ता। इसलिये उसके ही एक असामी धनईका मां रातको उसके साथ सोती थी। पर धनईकी मां अपनी टूटी झोपड़ीको चटाईकी मायाको योंही छोड़कर दुलारीके घर

खोनेको राजी नहीं हुई थी। उसकी इस निःस्वार्थ सेवा और त्यागके मूल्यमें दुलारीको उसे दोनों वक्त भोजन देना पड़ता था। अतः दो पेटका खर्च चलानेमें दुलारीको कुछ कष्ट होता था, पर कष्ट सहनेमें वह अभ्यस्त थी। घोर-से-घोर कष्ट पड़नेपर भी वह किसीके सामने हाथ नहीं फैलाती थी, स्वयं बिसेसरसे भी कुछ सहायता लेना नहीं चाहती थी। वह सोचती--क्या इस पापी पेटके लिये अपना माथा नीचा करूं? मनोरमा तो बिना खाये ही अपना दिन काट लेती है।

कलकत्ता आनेपर शान्ताने दुलारीको इन आठ-सात महीनोंमें बहुतसे पत्र लिखे। हर पत्रमें वह यही लिखा करती थी—बहिन तुम चली आओ, तुम्हारे बिना मेरा मन नहीं लगता। दुलारी उत्तरमें उसे सान्त्वना देती।

अब शान्ता अपने पत्रमें ये सब बातें नहीं लिखती। शायद अपने अनुरोधको निष्फल जानकर उसने लिखना छोड़ दिया।

शान्ताने कमसे कम दस-पन्द्रह चिट्ठियाँ लिखी होंगी, पर बिसेसरने एक कार्ड भी नहीं लिखा। शायद वह दुलारीसे रंज थे, पर रंज होकर आदमी के दिनतक रह सकता है? उस दिन तो बिसेसरके भावको देखकर ऐसा मालूम होता था कि वह दुलारीके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकेगा, मानो दुलारी उसके अन्तर्हृदयमें जड़ी हुई हो। ऐसे अनुरागके सामने क्रोध और रंज कबतक ठहर सकता है? तो क्या बिसेसरका वह प्रेम दिखाना झूठा था? दुलारीने सोचा, पुरुषोंके हृदयमें जितना अनुराग है, उससे कहीं अधिक छल-कपटकी मात्रा है। धिक्कार है पुरुषोंके प्रेमको!

किन्तु स्वामीके पत्र न लिखनेपर भी तो दुलारी उन्हें दो-एक पत्र लिख सकती थी। यदि पत्र लिखना ही प्रेम प्रकट करनेका साधन है तो क्या दुलारी भी अपने स्वामीसे प्रेम नहीं करती? नहीं, यह बात नहीं, दुलारी अपने स्वामीको हृदयसे प्यार करती थी। पर अपने मनसे पत्र लिखकर वह उनकी अवज्ञाकी पात्री नहीं बनना चाहती थी। यही है नारी हृदयका अभिमान!

किन्तु एक दिन दुलारीको यह अभिमान तोड़ना पड़ा। उसे सब कुछ छोड़-छाड़कर अपने स्वामीके पास कलकत्ते जाना पड़ा।

एक दिन शान्ताकी एक चिट्ठी आयी। चिट्ठी तो संक्षेपमें ही लिखी गयी थी, पर उसका विषय बड़ा भीषण था। शान्ताने लिखा था—बहिन, अब तो सर्वनाश हुआ चाहता है। आजकल उनकी हालत कुछ और ही हो गयी है। सात सात दिनपर भी वह एक क्षणके लिये दिखाई नहीं देते। न जाने वह कहां रहते हैं, क्या करते हैं? तुम जल्दीसे चली आओ, तुम्हें मेरे सिरकी सौगन्ध है, देर मत करना।

पत्र पढ़कर दुलारी स्तम्भित हो गयी। सोचा—यह क्या हुआ? क्या उनका अधःपतन हो गया—शान्ताके लिखनेका तो यही आशय है! या उसे वहां बुला ले जानेके लिये उसका एक कौशल तो नहीं है? नहीं-नहीं, शान्ता कभी ऐसे घृणित कौशलका अवलम्बन नहीं कर सकती। तो क्या सचमुच यही बात है?

अब दुलारीसे न रहा गया। उसके हृदयका उद्दीप्त अभिमान उसे रोक रखनेमें समर्थ न हुआ। उसने घरकी चीजोंको संभालकर

एक जगह रख दिया। गायको धनईके घर बांध आयी। उसे खर्च-खुराकीके लिये तीन रुपये दे दिये। उसके बाद रोते रोते मनोरमासे बिदा ले धनईकी मांको साथ ले कलकत्ते चली।

दुलारीके अकस्मात् कलकत्ते जानेका उद्देश्य जाननेके लिये बहुतोंको कौतूहल हुआ, पर किसीने उनका कौतूहल दूर नहीं किया। मनोरमाके सिवा दुलारीने चिट्ठीकी बात किसीसे नहीं कही थी। छिः छिः, क्या स्वामीके अधःपतनकी बात भी किसीसे कही जाती है? जिस किसीने पूछा, उससे उसने यही कहा कि शान्ताको देखने जा रही हूं। किन्तु लोगोंने उसकी बातका विश्वास नहीं किया, भला सौतको अपनी इच्छासे कौन देखने जाती है? हां, सौतसे लड़ने-झगड़नेके लिये जा सकती है।

-o—o-

सोलहवां परिच्छेद
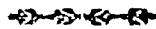
वास्तवमें बिसेसरका अधःपतन हो गया था। इस बार कलकत्ते आनेपर उसका मन औरका और हो गया। किसी चीजमें उसका मन नहीं लगता। अकसर वह चुपचाप बैठा सोचा करता। जब कभी शान्ता उसकेपास जाती तो बिगड़ खड़ा होता। कभी-कभी शान्ताको पास बुलाकर बहुत अधिक आदर करता। इससे शान्ताको आनन्द नहीं उलटे भय होता। स्वामीके इस भावान्तरको देखकर शान्ता कुछ स्थिर न कर सकी कि वह क्या करे? पूछनेपर बिसेसर

कुछ उत्तर नहीं देता, चुपचाप आंखें फाड़-फाड़कर उसकी ओर देखता। शान्ता भयके मारे घबरा जाती थी।

यद्यपि विसेसरने क्रोधवश ज़िद्से दूसरा विवाह कर लिया था, पर वह दुलारीको भूल नहीं सका था। विसेसरने उसे भुला देनेकी बहुत चेष्टा की थी, पर युवावस्थाकी वह संगिनी स्मृतिसे नहीं जा सकी। शान्ताके सरल हृदयका निर्मल प्रेमस्रोत दुलारीकी स्मृतिको विसेसरके हृदयसे धीरे धीरे बहा ले जा रहा था। यदि और कुछ दिनों तक यह हालत रहती तो कहा नहीं जा सकता कि क्या होता। किन्तु तीन वर्ष बाद फिर दुलारी सामने आयी। साक्षात् होते ही उसकी पूर्वस्मृति फिर जाग उठी। साथ ही उसके नारी-हृदयके स्वाभाविक दर्प एवं उसके आत्माभिमानने विसेसरके हृदयमें उसके प्रति श्रद्धाका भाव जाग्रत कर दिया। विसेसर बड़े आग्रहसे अपना समस्त हृदय दुलारी-को समर्पित कर उसे अङ्कमें लेनेके लिये आगे बढ़ा, पर उसे पा न सका। उस समय वह सुलभ होती हुई भी अप्राप्य थी। अपनी होती हुई भी परायी थी। विसेसरका प्रेमाभिलाषापूर्ण उन्मत्त हृदय धक्का खाकर क्रोध और क्षोभसे अधीर हो उठा। समाजके ऊपर उसने क्रोध किया, दुलारीके ऊपर बिगड़ा, अन्तमें सारा क्रोध और क्षोभ अपनेही ऊपर आ पड़ा। हाय! हाय! मैंने आप ही अपने रास्तेमें कांटे बोये हैं। विसेसरका हृदय पश्चात्तापकी अग्निसे धधक उठा।

पश्चात्तापके फल दो प्रकारके देखनेमें आते हैं। कोई-कोई तो पश्चात्तापकी अग्निमें तपकर सोनेकी तरह चमकते हुए बाहर

निकलते हैं और कोई-कोई उस अग्निमें अपना ज्ञान, बुद्धि, मनुष्यत्व सब कुछ जलाकर खाक कर डालते हैं। बिसेसर अन्तमें इसी पथका पथिक हुआ।

हृदयके साथ भीषण संग्राम करनेपर जब बिसेसर क्षत-विक्षत हो गया तब उसने शान्ति पानेकी आशासे सुरा देवीका आश्रय ग्रहण किया। पहले तो घरमें ही अकेले लुक छिपकर शराब पीने लगा। उसके बाद दो एक साथी जुट गये। फिर क्या था? अब तो बैठकमें यार-दोस्तोंकी मजलिस लगने लगी। बोतलपर बोतलें खाली की जाने लगीं; किन्तु खाली शराबसे ही मजलिसकी रौनक नहीं होती। उसके लिये अन्य अनुपानोंकी भी आवश्यकता हुई, फिर तो सनातन कालसे जिस वस्तुसे ऐसी मजलिसोंकी शोभा दूनी-चौगुनी होती है, बिसेसरने अपने बन्धुवर्गके साथ उसका भी समुचित प्रबन्ध किया।

यदि शान्ता अन्यान्य चतुर स्त्रियोंकी तरह अपने जीवन-धनको सम्भाल कर रखना जानती तो सम्भव था कि बिसेसरका इतना शीघ्र अधःपतन नहीं होता। किन्तु शान्ताका स्वभाव और ढंगका था। वह केवल स्वामीका आदर और प्रेम करना जानती थी, स्वामीसे प्रेमभिक्षा लेना न जानती थी। आदरके बदलेमें स्वामीके मुखपर विरक्तिका चिह्न देखकर वह भयसे दूर भाग जाती थी। उन्हें शराबसे मतवाला देखकर डरकर छिप जाती थी। ऐसी अवस्थामें जो होना चाहिये, वही हुआ। बिसेसर क्रमशः अधःपतनकी एक-एक सीढ़ी पार करने लगा अन्तमें कोई उपाय न देख शान्ता दुखारीको खबर दी।

सत्रहवां परिच्छेद

खबर पाकर दुलारी दौड़ी हुई आयी। शान्ताको मानो मझधारमें पड़कर किनारा मिला। उसने आंखोंके आंसू पोंछ बहिनका बड़े आदर-सत्कारसे स्वागत किया। दुलारीने देखा कि शान्ता अब वह शान्ता नहीं रही, अब तो केवल उसकी छायामात्र है। उसका वह हंसमुख चेहरा नहीं है, उसकी हंसी होठोंपर आकर ही रह जाती है। उसकी आंखें प्रफुल्लतासे नाच नहीं उठतीं, पर आसुओंके भारसे झुक जाती हैं। मुरझाई हुई कमलिनीकी नाईं शान्ताको देखकर दुलारीको बड़ा दुःख हुआ।

दुलारीने शान्तासे बहुत बातें पूछीं, पर वह सब बातोंका उत्तर न दे सकी। कहा—बहिन, मैं इतना सब नहीं जानती, अब तुम आ गयी हो, उन्हींसे सब पूछताछ कर लो।

दुलारीने पूछा—वह कहां हैं?

शान्ताने कहा—आज तीन दिनसे लापता हैं।

दुलारीने विस्मयसे कहा—तीन दिनसे!

शान्ताने कहा—तीन दिनकी ही बात सुनकर अवाक् हो गयी? कभी-कभी तो वह आठ-आठ दिनपर घर लौटते हैं।

दुलारी—इतने दिनतक कहां रहते हैं?

शान्ता—क्या मैं उनके पीछे-पीछे घूमा करती हूं कि बतलाऊं

विरक्त भावसे बिसेसरने कहा—क्यों मैंने क्या किया है? शायद तुम भी मुझे उपदेश देने आयी हो?

दुलारीने मुस्कराकर कहा—ना, उपदेश देने नहीं आयी हूं, लेने आयी हूं। कैसे हो?

दुलारीने बिसेसरके चरण छूकर प्रणाम किया। बिसेसरने मुस्कराते हुए कहा—बहुत अच्छा हूं, तभी तो अभी तुमसे प्रणाम ले सका हूं।

दुलारी—स्वामी सभी अवस्थाओंमें स्त्रीके प्रणाम करने योग्य हैं।

बिसेसर—शराब पीनेपर भी? वेश्याका संग करनेपर भी?

दुलारी—जातिच्युत, धर्मच्युत होनेपर भी स्वामी स्त्रीका महागुरु है।

बिसेसर—जान पड़ता है तुमने धर्मके भारको अपने गलेमें बांधकर लटका रखा है। कहो, कैसे आयी?

दुलारी—क्या मुझे नहीं आना चाहिये था?

बिसेसर—तुम्हारी तो यही इच्छा थी।

दुलारीके हृदयमें एक दीर्घ निःश्वास उठा, उसने उसे रोककर कहा—तब मैं क्यों आयी?

बिसे०—यह तो तुम्हीं बतला सकती हो। शायद शान्ताने आनेके लिये लिखा होगा।

दुला०—यदि उसने ही लिखा था, तो क्या दोष किया?

बिसे०—दोष कुछ नहीं है, पर देखता हूं कि वह मेरा ही नहीं, तुम्हारा भी सर्वनाश करेगी।

दुला०—वह तो तुम्हारे घरकी लक्ष्मी है।

बिसे०—मेरे घरकी लक्ष्मी तो बहुत दिन हुए निकल गयी। मेरे घरकी लक्ष्मी—

कहते कहते बिसेसरने मुंहकी बात मुंहमें ही दबा ली। दुलारीके सामने इतनी दीनता प्रकट करना उसने संगत नहीं समझा। किन्तु दुलारी बिसेसरके कहनेका आशय भली भांति समझ गयी, उसकी आंखें डबडबा आयीं। उसने दूसरी ओर अपना मुंह फेर लिया। बिसेसर भी अपना मुंह ढककर सो गया।

दुलारीने दोनों आंखोंको पोंछकर उसके और निकट जाकर कहा—फिर सो गये?

बिसेसरने कहा—तो क्या कहती हो, उठकर खड़ा हो जाऊं?

दुला०—हां, उठकर घरके भीतर चलो।

बिसे०—नहीं, मुझे अभी ही बाहर जाना होगा। कपड़े मैले हो गये थे, सिर्फ उन्हे बदलनेके लिये आया था।

दुला०—आज बाहर नहीं जाना होगा।

बिसे०—बात तो बुरी नहीं है, पर उसका कारण?

दुला०—कारण, तुम्हारे जानेसे शान्ताका जी दुखता है।

बिसे०—केवल इसीलिये नहीं जाऊं?

दुलारी और भी नजदीक सरक आयी। पासमें एक पंखा पड़ा था। उसे उठाकर झलते हुए कहा—उठो, चलो।

बिसेसरने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह आंखें बन्दकर पंखेकी ठंढी हवाका आनन्द ले रहा था। दुलारीने कहा—छिः! छिः!!

तुम्हें क्या हो गया है ? तुम्हारा चेहरा कैसा हो गया है ? तुम्हें देखकर तो रुलाई आती है।

बिसेसरने आंखें खोलीं और व्यग्र कण्ठसे कहा—क्या ? क्या कहा ? फिरसे कहो, तुमने क्या कहा ?

दुलारी किञ्चित् लज्जित होकर बोली—क्या और कोई नई बात है कि कहूं ?

बिसेसर—नयी-सी ही मालूम होती है।

दुलारी—अच्छा, मालूम होने दो, उठो चलो।

बिसे०—ना, मुझे फुर्सत नहीं है।

दुला०—बहुत फुर्सत है। आज तुमको बाहर नहीं जाने दूंगी।

बिसेसरने हंसकर कहा, क्या जबर्दस्ती पकड़ कर रोक रखोगी ?

दुलारीने भी मुस्कराते हुए कहा—हां, आज तुम्हें जबर्दस्ती पकड़कर रोक रखूंगी।

बिस०—ऐसा करनेसे समाज तो तुम्हें दोष नहीं देगा ?

दुलारी अब अपने हृदयके निःश्वासको रोक न सकी। बिसेसर फिर आंखें बन्द करके सो रहा। दुलारी चुपचाप उसके पास बैठी पंखा झलने लगी।

इतनेमें किसीने बाहरसे पुकारा—बिसेसर भाई!

दुलारीने चकित हो दरवाजेकी ओर देखा। जल्दीसे सिरका आंचल संभाल लिया और पंखा फेंककर एक कोनेमें जाकर खड़ी हो गयी। जिसने दरवाजेसे पुकारा था, वह भी कुछ अप्रतिभ हो

ठिठक कर पीछे हट गया। विसेसरने उठकर जूता पहना एवं दुलारी-की ओर तिरछी नजरोंसे देखते हुए बाहर चला गया।

आगन्तुकको दुलारीने पहचान लिया, वह था हीरालाल। उसने मनमें कहा—यह यहां क्यों आया? हीरालाल क्या मेरे भाग्या-काशका धूमकेतु है? एक बार तो इसने मेरा सर्वनाश ही कर दिया, क्या फिर मेरा सर्वनाश करनेके लिये यहां इसका उदय हुआ है?

दुलारीके घरके भीतर आनेपर शान्ताने उससे पूछा—मुलाकात हुई बहिन!

दुलारीने विषाद-भरे स्वरमें संक्षेपमें ही कहा—हां।

शान्ता—उन्होंने क्या कहा?

दुलारी—कुछ नहीं

शान्ता—क्या बाहर चले गये?

दुलारी—हां।

शान्ता—तुम्हारे बारेमें भी कुछ कहा?

दुलारी—कुछ भी नहीं।

यह कहकर दुलारी किसी और कामसे बाहर चली गयी।

अठारहवां परिच्छेद

——*०*——

बहुत दिनोंसे हीरालाल और बिसेसरमें मित्रता थी। केवल मित्रता ही नहीं थी, बिसेसर हीरालालकी रुपये-पैसेसे भी मदद करता था। बिसेसरकी चेष्टा एवं सिफारिशसे ही उसे एक नौकरी भी मिल गयी थी। इसके बदले हीरालाल भी बिसेसरको प्रत्युपकार करनेमें त्रुटि नहीं रखता था। एकमात्र हीरालालकी ही चेष्टासे वह अपना दूसरा विवाह कर सका था।

अपनी माताके अन्तसमय घर जानेपर बिसेसरने हीरालालके सम्बन्धमें जो बातें सुनी थीं उनसे उसके ऊपर उसका मर्मान्तिक क्रोध होना स्वाभाविक ही था और हुआ भी यही। बिसेसरने सोच रखा था कि पापी हीरालालका मुंह कभी नहीं देखूंगा और न हीरालालको भी मुझको देखनेका साहस होगा।

किन्तु बिसेसरकी यह धारणा ठीक नहीं थी। उसके कलकत्ते आनेके कुछ ही दिन बाद जब हीरालाल बिसेसर भाई कहते हुए निस्सङ्कोच उसके सामने आकर खड़ा हो गया, तो बिसेसरको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसके बाद जब हीरालालने अपनी स्वाभाविक ओजस्विनी भाषामें अपनी निर्दोषिता और महान उद्देश्यको स्पष्ट रूपसे बतला दिया तब बिसेसरको भी उसकी निर्दोषिताका विश्वास हो गया। उसने समझा दिया कि उसकी मां और स्त्री कष्टकी सीमापर पहुंच गयी और इतने कष्टमें पड़नेपर भी वह बिसेसरकी सहायता लेनेको

राजी न थी। तब वह बिसेसरका ही होकर उसकी माता और स्त्रीका दुर्दशासे उद्धार करनेके लिये आगे बढ़ा था। किन्तु संसारमें निन्दाप्रिय व्यक्तियोंकी कोई कमी नहीं है, वरन् उनकी ही संख्या अधिक है। इन लोगोंकी दृष्टि सब कामोंके अन्धेरे भागपर ही पड़ती है। प्रकाशकी ओर देखनेका इनका साहस नहीं होता। इन्हीं निन्दकोंकी बातोंपर ध्यान देकर उसे बिना अपराधके दोषी ठहराया जायगा तो उसके एवं धर्मके प्रति अत्याचार करना होगा।

हीरालालकी बातका बिसेसरने विश्वास कर लिया। उसने दुलारीके मुंहसे भी ऐसी कोई बात नहीं सुनी थी, जिससे हीरालाल को दोषी ठहराया जाय। वह वास्तवमें सहायता करने गया था, पर गर्विता दुलारीने उसे अपना अपमान समझकर लौटा दिया था और हीरालालको अपने घर आनेसे मना किया था। इसमें हीरा-लालका क्या दोष है।

बिसेसरने हीरालालको क्षमा कर दिया और फिर उसे अपना मित्र बना लिया। उसके बाद जब बिसेसर मानसिक चिन्तासे पीड़ित होने लगा तब हीरालालने ही उसका सुविज्ञ चिकित्सक होकर उसे चिन्ता-ज्वरसे मुक्त होनेके लिये गुणकारी औषधियोंकी व्यवस्था कर दी थी। इस औषधिके प्रभावसे हीरालाल जितना अधिक आधिपत्य बिसेसर-के हृदयपर जमाता गया उतना ही अधिक वह अपने विवेकांध मित्रको अधःपतनकी ओर ले जाते हुए जोहरा बाईके पवित्र मन्दिरमें ले पहुंचा। बिसेसर जानकर भी अनजान हो गया। उसका अभिमान-क्षुब्ध हृदय विवेककी लगाम छोड़कर पथभ्रष्ट हो गया।

इसी समय अकस्मात् दुलारीको देखकर बिसेसर कुछ कुंठित हुआ। हीरालाल भी मन ही मन बहुत कुढ़ा। उसने किलेको फतह कर लिया था, पर जिस उद्देश्यसे किला जीता था, वह अभीतक पूरा नहीं हुआ था। अब दुलारीके आ जानेसे उसका असली रूप प्रकट हो जायेगा। इसलिये उसे अपनी उद्देश्यसिद्धिमें भी सन्देह हो गया।

उन्नीसवां परिच्छेद

दुलारीके आनेपर शान्ताको एक सन्तान हुई। इससे दुलारीको बड़ा आनन्द हुआ, पर शान्ताकी अवस्था देखकर उसका आनन्द विषादके रूपमें परिणत हो गया। दिन दिन शान्ताका शरीर क्षीण होने लगा। छातीकी पसलियां दिखाई देरही थीं, आंखें धंसी जा रही थीं, गाल पोपले हो गये थे। उसकी दशा उस सूर्यमुखी फूलकी तरह हो रही थी जो सूर्यास्तके समय मुरझाकर जमीनकी ओर झुक रहा हो। तो भी शांताके मुखपर प्रसन्नता थी, पर वह हंसी कब तक रहेगी? दुलारीको शांताकी दशाके लिये बड़ी चिंता थी।

दुलारीने एक दिन बिसेसरको धर-पकड़कर बहुत कहा सुना, कि तुम देखते नहीं, शांताकी क्या हालत हो रही है? वह अब बच नहीं सकती।

बिसेसर—तो मैं क्या करूं?

दुलारी—क्या इसी लिये उससे विवाह किया था?

बिसेसर—नहीं।

दुला०—तो उसे इस तरह क्यों मार रहे हो ?

बिसे०—उसे मारनेकी मेरी जरा भी इच्छा नहीं है।

दुला०—इच्छा क्यों नहीं है, तुम जान-बूझकर उसकी हत्या कर रहे हो।

बिसे०—मैंने समझा नहीं, तुम क्या कर रही हो ?

दुला०—वह तुम्हारी स्त्री है, तुम उसके स्वामी हो, क्या इतना भी नहीं समझ सकते ?

बिसे०—यह सब फिजूलकी बातें हैं संसारमें कोई किसीका नहीं है। आंख बन्द कर लेनेपर कहीं कुछ नहीं है।

बिसेसर खूब जोरसे हंस पड़ा। दुलारीने जरा गर्म होकर कहा—तुम्हें इतना तत्वज्ञान कबसे आ गया ?

बिसे०—जिस दिनसे गलेके नीचे शराब उतरी है, उसी दिनसे। शराब जैसी तत्वज्ञानदायिनी संसारमें दूसरी वस्तु नहीं है। आया समझमें ?

बीसवां परिच्छेद

—oo—

दुलारीसे हाथ छुड़ाकर बिसेसर जोहरा बाईके घर पहुंचा, पर दुलारीकी बातें उसके हृदयमें इस प्रकार चुभ गयी थीं कि वे भुलाये भी नहीं भूलती थीं। शराबकी प्रबल धारामें वे बातें बह नहीं गयीं, और न जोहरा बाईके मधुर संगीतकी ध्वनिमें ही मिल

गयीं। बिसेसरका मन जोहरा बाईके घर भी नहीं लगा। वह निराश होकर वहांसे लौट आया।

बिसेसरने सोचा, दुलारी मेरे सर्वनाशकी जड़ है। मुझे अधोगतिके गढ़ेमें गिराकर अब वह साधु बनके दूर बैठी मेरा तिरस्कार कर रही है। पर वह मेरी विवाहिता स्त्री है। मेरी आज्ञाकी अधीना और मेरी इच्छाकी दासी है। आज मेरी वही दासी मालिक बनकर मुझे राह बता रही है। मुझे धिक्कार है! मुझे धिक्कार है! सौ बार धिक्कार है कि पुरुष होकर मैं उसकी उंगलीके इशारोंपर चलता हूं! कितनी लज्जाकी बात है? बिसेसरको ऐसा जान पड़ा, मानो उसकी इस हीन दशापर सारा संसार हंस रहा है।

शराबके नशेमें चूर बिसेसरने यह स्थिर किया कि दुलारीके इस गर्वको—उसके इस विजयाभिमानको चूर-चूर कर देना होगा। वह एक मामूली औरत है। वह मेरी स्त्री है, मेरी दासी है, उसे यह स्वीकार करना पड़ेगा।

बिसेसर जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाये घरकी ओर चला।

बहुत दिनोंके बाद शामको बिसेसरके घरके भीतर आते हुए देखकर दुलारी और शान्ता दोनोंको बड़ा विस्मय हुआ। शान्ताने मुस्कराकर दुलारीसे कहा—जान पड़ता है, भाग्य लौटा।

दुलारीने पूछा—किसका? तुम्हारा?

शान्ताने कहा—नहीं, तुम्हारा।

दुलारीने मुस्कराते हुए कहा—हम दोनोंमेंसे किसीका नहीं, जो लौटा आ रहा है उसीका?

बिसेसरने घरमें आकर पुकारा—दुलारी !

दुलारीने कहा—देख तो शान्ता, क्या कहते हैं ?

शान्ता – नहीं, बहिन ! मैं नहीं जाऊंगी, तुम्हीं जाओ ।

दुलारीने शान्ताकी ओर इस क्रोधपूर्ण दृष्टिसे देखा कि फिर वह उसका प्रतिवाद न कर सकी । वह घूंघट काढ़कर नववधूकी नाईं स्वामीके प्रथम सम्भाषणकी लालसासे दरवाजेके पास आकर खड़ी हो गयी और बोली—क्या बुलाते हो ?

बिसेसरने कर्कश स्वरमें कहा—हां, दुलारी कहां है ?

शान्ताने नीची आंखें करके कहा—वह इस समय रसोई घरमें हैं ।

बिसेसरने क्रोधित होकर कहा—क्या करती है ? उसे भेज दो । वहीं एक चारपाई रखी थी । वह उसपर बैठ गया । शान्ता दौड़ी हुई दुलारीके पास चली गयी । दुलारीने पूछा—अरे भाग क्यों आई ?

शान्ताने रोनी-सी सूरत बनाकर कहा—तुम्हीं जाओ बहन ! तुम्हींको बुलाते हैं ।

दुलारीने बिसेसरके पास जाकर पूछा—क्या हुआ है ?

बिसेसर चारपाईपर बैठा पांव हिला रहा था । उसने दुलारीकी ओर एक तीव्र दृष्टिसे देखा और कहा—कुछ नहीं ।

दुला०—जल ले आऊं ?

बिसे०—कोई जरूरत नहीं ।

दुलारी चुपचाप वहीं खड़ी रही । बिसेसर भी चुप खड़ा था । वह कुछ स्थिर न कर सका कि कौनसी बात पहले कहूं ? कहांसे

आरम्भ करूं ? कुछ देर और खड़ी रहकर दुलारीने पूछा—मुझे, किसलिये बुलाया था ?

बिसेसरने कुछ रूखे स्वरमें कहा—क्या इसमें मेरा कुछ कसूर हो गया ?

दुला०—तुम्हारा कसूर क्या है ? मुझे बहुत काम करना है इसलिये पूछ रही हूं।

बिसे०—यह तो मैं नहीं जानता था। यदि काम है तो जा सकती हो।

दुलारी समझ गयी कि बिसेसर कुछ कहा चाहता है, पर संकोचवश कह नहीं सकता। इसीलिये वह वहांसे गयी नहीं। थोड़ी देर तक खड़ी रहनेके बाद उसने पूछा—आज रातको तुम क्या खाओगे ?---भात या रोटी ?

बिसे०—जो विधाता दे देगा।

पाकेटसे एक सिगरेट निकालकर पीते हुए उसने कहा—क्या तुम अब यहीं रहोगी ?

दुला०—तुम्हारी राय क्या है ?

बिसे०—तुम्हें मेरी रायकी क्या परवा ? इसीलिये मैं तुम्हारी ही राय जानना चाहता हूं।

दुलारी कुछ देर सोचती रही, उसके बाद बोली—मेरे यहां रहने से क्या तुम्हारा कुछ नुकसान होगा ?

बिसे०—मेरे नुकसान और फायदेकी बात तुम छोड़ दो। तुम अपनी बात कहो।

दुलारीने सर नीचा कर लिया। उसने भग्नस्वरमें कहा--क्या मेरी बात और तुम्हारी बात भिन्न भिन्न है ?

बिसेसरने कहा—मुझे तो ऐसा ही जान पड़ता है। मेरे जीने-मरनेसे तुम्हारा कुछ हानि-लाभ नहीं।

दुलारी स्वामीके चरणोंके पास जाकर बैठ गयी। आंखोंमें जल भरकर स्वामीकी ओर देखकर उसने कहा—आज तुम ऐसी बातें क्यों कर रहे हो ?

बिसेसरने उत्तेजित होकर कहा—किसके लिये मेरी यह दशा हुई है ? किस दुःखसे पीड़ित होकर मैं आत्महत्या करनेके लिये उद्यत हुआ हूं। क्या तुमने कभी इस विषयमें कुछ सोचा है या सोचनेकी चेष्टा की है ?

दुलारीसे अब न रहा गया। उसने दोनों हाथोंसे स्वामीके पैरोंको पकड़कर कहा—मैं स्त्री हूं, मुझमें बुद्धि नहीं; यह सोचकर मेरा अपराध क्षमा करो।

बिसेसरने अपना पांव ऊपर खींच लिया और हंसते हुए व्यंगसे कहा—मैं यह नहीं जानता था कि तुम मेरे पांव भी पकड़ सकती हो, इसलिये तुम क्षमाकी अधिकारिणी हो।

दुलारीको ऐसा मालूम हुआ जैसे छातीमें तीर चुभ गया हो। वह उठकर खड़ी हो गयी और आंचलसे आंसू पोंछती हुई बोली—तो क्या मेरा उपहास करनेके लिये ही बुलाया है ?

बिसेसरने गम्भीर स्वरमें कहा—नहीं, तुम मेरी स्त्री हो, मेरी दासी हो, यही समझानेके लिये बुलाया है। सुनो, यदि तुम यहां

रहना चाहती हो तो यहां रहो, किन्तु यहां तुम्हें मेरी स्त्रीकी तरह रहना पड़ेगा। मंजूर है ?

दुलारीने कठोर स्वरमें उत्तर दिया—नहीं। यह कहकर वह चली गयी। बिसेसर भी उसी क्षण घरके बाहर चला गया।

उस समय शान्ता चूल्हेमें आग जलाकर आटा गूंध रही थी। बिसेसरको बाहर जाते देखकर उसने पूछा—फिर बाहर चले गये, बहिन ?

दुलारीने कहा—तो क्या मैं बांधकर रखूं ?

दुलारीने चूल्हेमें एक बाल्टी पानी डालकर आग बुझा दी। शान्ता अवाक् होकर उसकी ओर देखने लगी।

दूसरे दिन सबेरे दुलारी अपनी मोटरी-गठरी बांध कर घर जाने लगी। शान्ता मना करने गयी तो उसे एक चपत जड़ दी। फिर शान्ताको उसे रोकनेका साहस नहीं पड़ा।

दोपहरको घर आकर बिसेसरने पुकारा—दुलारी!

शान्ता एक ओर पड़ी रो रही थी। स्वामीकी आवाज सुनकर वह संभलकर बैठ गयी। बिसेसरने पूछा— दुलारी कहां है ?

शान्ताने रोते हुए कहा---वह चली गयी।

बिसेसरने टोपी-कुरता उतारकर खूंटीपर रख दिया और चारपाईपर आकर सो रहा। शान्ताकी ओर देखकर क्रुद्ध स्वरमें उसने कहा---इसी लिये शायद यह रोना-पीटना हो रहा है। वह तुम्हारी कौन है ? यदि उसके लिये तुम्हें रोना है तो अभी मेरे घरसे बाहर निकल जाओ।

शान्ता खिसकती हुई चली गयी। बिसेसर करवट बदल कर सो गया। फिर थोड़ी ही देर बाद उठकर कुरता-टोपी पहन घरसे बाहर निकल गया।

दुलारी घर पहुंचकर कुछ देर विश्राम करनेके बाद मनोरमासे भेंट करने गयी; किन्तु वह न मिली। सुना, वह घरपर नहीं है। एक दिन रातको वह न जाने कहां चली गयी; फिर लौटी नहीं।

दुलारी समझ गयी कि हतभागिनी मनोरमा अत्यन्त कष्टसे पीड़ित हो, चिरशान्तिकी गोदमें विश्राम करने चली गयी। हताश हो, वह अपने घर लौट आयी।

इक्कीसवां परिच्छेद
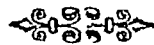
दुलारीके कलकत्ते चले जानेपर मनोरमाके दिन बड़े कष्टसे बीतने लगे। दुलारीके बिना उसे दुःखमें सहानुभूति, शोकमें सान्त्वना और निराशामें आशा देनेवाला कोई न रहा। उसका जीवन भी दुःसह हो उठा। रात-दिन लांछना, अपमान, भर्त्सना सहते-सहते उसके हृदयका धैर्य जाता रहा। उसकी जगह सौतेली मांकी वाक्य-यन्त्रणा, असह्य वेदना और निराशाकी दारुण पीड़ाने मनोरमाके हृदयमें अपना घर कर लिया।

धीरे-धीरे मनोरमाकी प्रकृति बदल गयी। धैर्यहीना होकर वह चुपचाप सौतेली मांके तिरस्कारको नहीं सह लेती थी, वरन् उसका

विकट प्रतिवाद करती। सुभद्राकी कड़ी बातके उत्तरमें भी कड़ी बात कहती। इसका परिणाम बड़ा भयानक हुआ। पहले मनोरमा सुभद्राकी बात चुपचाप सह लेती थी; इसीलिये लड़ाई-झगड़ा होनेकी नौबत नहीं आती थी, किन्तु अब तो घरमें नित्य महाभारत होने लगा। उस दिन रातकी कलह-किचकिचसे केवल पं० दीनदयाल ही नहीं, पड़ोसी भी विरक्त हो उठे।

एक दिन पं० दीनदयालने आजिज आकर कहा—अब तो घरमें रहना मुश्किल हो रहा है।

सुभद्राने मुंह बिचकाकर कहा—तो मुझे मायके भेज दो, सारा बखेड़ा दूर ही हो जाय।

पं० दीनदयालने कहा—टोले-महल्लेके सभी लोग निंदा कर रहे हैं। इसीलिये कहता हूं।

सुभद्रा—तब क्या उन्हीं लोगोंके कहनेसे मेरे मुंहमें लगाम चढ़ाने आये हो?

पं० दीन०—नहीं, नहीं, मैं यह पूछता हूं कि आजकल घरमें इतना झगड़ा क्यों हो रहा है।

सु०—मुझे झगड़ा करनेका शौक है। मैं झगड़ालू हूं, कलही हूं, किसीको देख नहीं सकती, इसीलिये झगड़ा होता है।

यह कहकर सुभद्राने आंचलमें अपना मुंह छिपा लिया। पं० दीनदयाल सहमकर ठंडे पड़ गये। वे सुभद्राका हाथ पकड़कर उसके मुंहपरसे आंचल हटाने लगे। सुभद्रा और भी जोरसे आंचल पकड़े रही। पण्डितजीने बड़े आदरसे पत्नीको छातीसे लगा लिया।

सुभद्रा फूट-फूटकर रोने लगी। पं० दीनदयालने उसके आंसू पोंछते हुए कहा—छिः ! छिः ! तुम अब भी नादान बच्ची बनी हो, जरा भी अकल नहीं आई ?

स्वामीकी छातीसे सिर हटाकर सुभद्राने कहा—बहुत अच्छा ! मैं नादान हूं । तुम बड़े अक्लमन्द हो और तुम्हारी लड़की भी बड़ी अक्लमन्द है ।

पं० दीन०—हाय ! हाय ! मैं उसीकी तो बात पूछ रहा हूं । वह आजकल इतना बढ़-बढ़के बातें क्यों कह रही है ।

सु०--मैं क्या बतलाऊं ? तुम पुरुष हो, तुममें विद्या है, बुद्धि है । तुम नहीं जानते तो मैं कैसे जान सकती हूं ।

दीन०—स्त्रियां यह सब बातें अच्छी तरह समझ सकती हैं ।

सुभद्रा—समझ सकनेपर भी मैं कुछ नहीं कहूंगी । कुछ भी हो, आखिर सौत सौत ही है । मेरी बातका विश्वास ही कौन करेगा ? और सुनकर तुम्हीं क्या सोचोगे ?

सुभद्राकी बातमें एक गूढ़ अर्थ छिपा था । उसे समझकर पण्डित जीके हृदयमें उथल-पुथल मच गयी । उन्होंने पूछा—सुभद्रा, कुछ कहो भी तो कि क्या बात है ?

"बात क्या है ?" कहकर सुभद्राने स्वामीके मुंहकी ओर श्लेषपूर्ण कटाक्षसे देखा । पं० दीनदयालका सन्देह और भी बढ़ गया । उन्होंने बड़े आग्रहसे कहा--नहीं, नहीं, तुम्हें कहना ही होगा ।

सुभद्राने गम्भीर होकर कहा--मैं नहीं जानती । तुम्हें इन सब बातोंसे क्या मतलब ? मैं न तो तीनमें हूं, न तेरहमें ।

पं० दीनदयालने पत्नीके दोनों हाथ पकड़कर बड़ी व्यग्रतासे कहा—नहीं, नहीं; तुम जो कुछ जानती हो कहो। तुम्हें मेरे सिरकी सौगन्ध है, कोई बात छिपाना मत।

सुभद्राने अपने दोनों हाथ छुड़ाकर स्वामीके मुंहको जल्दी बन्द करके कहा—छिः! छिः! यह क्या कह रहे हो?

पं० दीनदयालने कहा—तो कहती क्यों नहीं, क्या बात है?

उसके बाद सुभद्रा स्वामीके पास आ सटकर बैठ गयी। फिर उधर देखकर उसने धीरेसे कहा—तुम स्वामी हो, जब तुम मुझसे पूछ रहे हो तो मुझे कहना ही पड़ेगा। नहीं तो मेरी छाती फट जाती, पर मेरे मुंहसे यह बात नहीं निकलती। कुछ भी हो, इसमें घरकी ही तो बदनामी है।

बदनामी! दीनदयाल सिहर उठे। उन्होंने हक-बकाकर कहा—बदनामी! किसकी बदनामी! मनोरमाकी!

सु०—धीरे-धीरे बोलो, कोई सुन लेगा। उसको तो तुम उसकी ससुराल रख आये थे?

पं० दीन०—हां।

सु०—फिर उन्होंने उसे यहां क्यों भेज दिया?

पं० दीन०—शायद पटी नहीं होगी।

सु०—क्यों नहीं पटी?

पं० दीन०—यह मैं कैसे जान सकता हूं?

सु०—जानना तो चाहिये?

पं० दीन०—तुमने क्या जाना है?

सु०—बहुत कुछ जाना है, बड़ी लम्बी कहानी है।

पं० दीन०--तुमसे किसने क्या कहा?

सु०—उसके घरके पास ही दमड़ीकी बहिनकी ससुराल है। दमड़ी वहां गया था, वही यह खबर ले आया है।

पं० दीन०—क्या खबर ले आया है?

सु०—बहुतसी बातें हैं। तुम्हारे सुनने-लायक नहीं।

सुभद्राका हाथ पकड़कर पं० दीनदयालने कहा—नहीं, नहीं, तुम सब खोलकर कहो। क्या हुआ है?

सु०—बिगड़ोगे तो नहीं?

पं० दीन० - नहीं।

इसके बाद उसने जो कुछ दमड़ीसे सुना था, सब कह सुनाया। किस प्रकार अपनी देवरानीके भाई गोपीनाथसे उसका अनुचित सम्बन्ध हुआ, किस प्रकार यह बात उसके देवरको मालूम हुई, किस प्रकार वह उसे यहां भेज गया--आदि सुभद्राने एक-एक करके सारा हाल कह सुनाया। पं० दीनदयाल सांस रोककर चुपचाप सब सुन रहे थे। उनका सारा शरीर क्रोधसे जल-भुन उठा। क्रोधसे कांपते हुए उन्होंने कहा--बात यहां तक पहुंच गयी है! आज रातको ही उस पापिष्ठाको घरसे बाहर निकाल दूंगा।

पं० दीनदयालने क्रोधसे पुकारा—मनोरमा! पिताकी क्रोधभरी बुलाहटको सुनकर मनोरमा आकर दरवाजेके पास खड़ी हो गयी।

पं० दीनदयालने गरजकर कहा—अभी मेरी आखोंके सामनेसे चली जा। मैं तेरा मुंह नहीं देखना चाहता।

मनोरमाने कहा--बाबू जी ! ऐसा क्यों कहते हैं ? मैंने क्या किया ?

पं० दीनदयाल दौड़कर दरवाजेके पास चले गये। और तड़प-कर बोले--पूछती है, क्या किया है ? अपने मुंहमें आग लगायी है और मेरे मुंहमें कालिख पोती है।

सुभद्रा स्वामीका हाथ पकड़कर उनको भीतर ले गयी ? और बोली—यह तुम क्या कर रहे हो, यह तुम्हारी ही लड़की है न ?

पं० दीनदयालने चिल्लाकर कहा—ऐसी लड़कीका मर जाना ही अच्छा है। यदि मैं इस अभागिनको कल ही झाड़ू मारकर घरसे बाहर निकाल न दूं तो...

बीचमें ही सुभद्रा बोल उठी—यदि तुम ऐसा करोगे, तो मैं गलेमें फांसी डाल लूंगी।

पं० दीनदयालने कहा—तब क्या तुम यह कहना चाहती हो कि इस कुलटाके हाथका जल पीना होगा ? इसीके हाथका अन्न...

सुभद्राने कहा—यह कैसे होगा ? मेरे भी बाल बच्चे हैं, क्या मुझे पाप-पुण्यका डर नहीं है ? फिर भी सब काम सोच-विचार कर करना चाहिये। घरके कलंककी बात यदि टोले-महल्लेके चार आदमी जान जायंगे तो हमारा भी माथा नीचा होगा।

सुभद्राने स्वामीको ले जाकर चारपाईपर बैठा दिया और भीतर से दरवाजा बन्द कर दिया। उस समय 'मनोरमाका शरीर थर-थर कांप रहा था। उसकी आंखोंके सामने अंधेरा छा गया। व्याकुल होकर वह बोली—हे भगवन ! तुम कहां बैठे हो ! आकर मेरी रक्षा करो। आत्महत्याके महापापसे मुझे बचाओ।

बाईसवां परिच्छेद

रात हो रही थी। एक युवक नदीके किनारे किनारे रेलवे स्टेशन-से गांवकी ओर आ रहा था। उसके शरीरपर एक सफेद कुरता था। बगलमें छाता, एक हाथमें गठरी और दूसरे हाथमें जूता था। घुटनेतक धूल भरी थी। रात अधिक नहीं गयी थी, पर रास्ता सुनसान हो गया था। कोई आदमी आता-जाता नहीं दिखाई देता था।

चलते चलते वह युवक गांवके पासही एक पुराने बड़के पेड़के नीचे अंधेरेमें आकर खड़ा हो गया। वहां आ वह जूता, छाता और गठरीको रखकर विश्राम करने लगा। कुछ देर विश्राम करनेके बाद वह हाथ-पांव धोनेके लिये बायें हाथमें जूता लेकर नदीकी ओर चला। पर कुछ दूर जाते ही वह ठिठक कर खड़ा हो गया। उसने देखा कि सफेद साड़ी पहने एक स्त्री घाटके नीचे उतर रही है। युवक आगे न बढ़ सका, वह लौट कर फिर अपनी जगह पर बैठ गया। उसने सोचा—इतनी रातको यह स्त्री अकेली यहा किस लिये आयी है? नदीके आस-पास आदमियोंकी बस्ती भी नहीं है। तब यह स्त्री किस साहससे यहां आयी? किसी गृहस्थकी स्त्रीमें तो इतना साहस नहीं होता। प्रेतनी तो नहीं है?

भूत-प्रेतनीका भय न होते हुए भी उस निर्जन स्थानमें—भूत-योनिके प्रधान निवासस्थान वटवृक्षके नीचे बैठकर उस युवकको छाती

धड़धड़ करने लगी। इसलिये उस स्त्रीकी ओर देखनेकी इच्छा न होते हुए भी उसकी आंखें बरबस उसी ओर चली जाती थीं। उसने देखा कि स्त्री और किसी ओर न जाकर सीधे जलकी ओर जा रही है। घुटने भर पानीमें जाकर उसने एक बार इधर उधर देखा। उसके बाद और अधिक पानीमें जाने लगी। उसकी कमर डूब गयी, छाती डूब गयी, गरदन डूब गयी, तोभी वह न रुकी। क्रमशः ठुड्डी डूबी, नाक डूबी, सिर डूबा। उसके बाद कुछ नहीं देखा गया। उसके थोड़ी देर बाद ही हाथ पैर चलानेका शब्द सुनाई दिया। अब तक युवक संशंकित हो यह सब देख रहा था। अब उसको मामला समझनेमें देर न लगी। वह दौड़ता हुआ घाटपर पहुंचा और कपड़े उतारकर पानीमें कूद पड़ा।

शरद् कालकी नदी थी। पानीकी धार तेज नहीं थी। इसलिये स्त्रीकी देह भी अधिक दूर बहकर नहीं गयी थी। अब भी वह मृत्युसे युद्ध कर रही थी। पानीसे निकलनेके लिये हाथ-पांव पटक रही थी, पर उसकी चेष्टा सफल नहीं होती थी। मृत्यु क्रमशः उसे अपनी ओर खींचे लिये जा रही थी। पानीमें धार थी; इसीलिये वह अब भी डूबी नहीं थी, नहीं तो अबतक पानीके नीचे चली गयी होती।

युवक तैरते हुए स्त्रीके पास पहुंचा और उसे पकड़ कर किनारे पर ले आया। किनारे आकर उसने स्त्रीके पेटको अपने सिरपर रखकर कई बार उसे घुमाया-फिराया। स्त्रीके मुंहसे पानी निकल पड़ा। उसके बाद युवकने उसे बालूपर लिटा दिया।

थोड़ी ही देरके बाद वह स्वस्थ होकर उठ कर बैठने लगी। पर युवकने उसे मना करते हुए कहा—अभी उठो मत। थोड़ी देर और लेटी रहो ?

स्त्रीने एक लम्बी सांस लेते हुए क्षीण स्वरमें कहा—मैं कहां हूं ?

चन्द्रमाकी किरणें वृक्षके पत्तोंको छेदती हुई उस रमणीके मुख पर पड रही थीं। कण्ठस्वरसे चौंककर युवकने त्रस्त नेत्रोंसे उस युवतीकी ओर देखा। देखते हुए उसने आश्चर्यसे कहा—यह क्या मनोरमा ?

मनोरमाने कहा—गोपी भैया ?

"जय जगदीश्वर !" कहकर गोपीनाथ वहीं बैठ गया।

मनोरमा उठ बैठी। भीगी हुई साड़ीके आंचलसे अपने सिरको ढकती हुई बोली—गोपी भैया, तुम यहां कैसे ?

गोपीनाथने हर्षित होकर कहा—भगवान मुझे यहां ले आये हैं—तुम्हे बचानेके लिये ही वे मुझे यहां लाये हैं।

मनोरमा—क्या तुमने ही मुझे बचाया है ?

गोपी०--बचाया तो भगवानने, मैं तो एक बहानामात्र हूं।

मनोरमाने कुछ रूखे स्वरमें कहा—तुमने क्यों बचाया ? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?

गोपीनाथ मनोरमाके कहनेका कुछ आशय न समझ आश्चर्यसे उसकी ओर देखता रहा। मनोरमाने कहा—तुम मुझे मरने भी न दोगे ? तुमने ऐसा अन्याय क्यों किया ?

गोपीनाथने आश्चर्यसे कहा—अन्याय ?

मनोरमा—हां, एक बार नहीं, हजार बार अन्याय।

गोपी०—आत्महत्यासे भी बढ़कर?

मनोरमाने झिझक कर कहा—मैं आत्महत्या करूंगी? इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ता है?

गोपी०—और तुम्हारा ही इससे क्या लाभ?

मनोरमा—मेरा लाभ?—मेरे हृदयकी ज्वाला शान्त हो जायगी।

गोपी०—शान्त तो न होगी, उल्टे बढ़ जायगी।

मनोरमा—मरनेके बाद न? मैं तो देखने नहीं आऊंगी।

गोपी०—यह तुम्हारी भूल है। तुम्हें ही देखना होगा, तुम्हें ही भुगतना होगा।

मनोरमा—मैं तुम्हारे साथ तर्क करना नहीं चाहती।

गोपी०—मेरी भी यह इच्छा नहीं है। उठो, घर चलो।

मनोरमाने तारोंसे जगमगाते आकाशकी ओर आंख उठाकर देखा और एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—घरमें यदि रहनेकी जगह होती तो नदीके गर्भमें जगह खोजने नहीं आती।

गोपीनाथ चुप रहा। थोड़ी देर बाद मनोरमाने पूछा—तुम अकस्मात् यहां कहांसे चले आये?

गोपी०—कलकत्तेसे आ रहा हूं।

मनोरमा—वहां किस लिये गये थे?

गोपी०—आजकल मैं कलकत्तेमें ही रहता हूं। वहीं नौकरी करता हूं।

मनोरमा—अपनी बहिनके यहां नहीं रहते?

गोपी०—ना, तुम जिस दिन चली आयी, उसी दिन मैं भी वहांसे चला आया।

मनोरमा—क्यों चले आये?

गोपी०—बहनोईका अन्नदास होकर रहनेकी इच्छा नहीं हुई।

मनोरमा—इधर कहां जा रहे थे?

गोपीनाथने कुछ सोचकर झूठी बात कही कि एक बार फिर बहिनसे मिलने जा रहा हूं।

मनोरमा चुपचाप बैठी सोचने लगी। गोपीनाथने कहा—तो अब तुम कहां जाओगी?

दीर्घश्वास लेकर मनोरमाने कहा—संसारमें मेरे लिये स्थान नहीं है।

गोपी०—जहां कीट-पतंगोंके लिये स्थान है, वहां तुम्हारे लिये स्थान नहीं है?

मनोरमा—मैं कीट-पतंग नहीं हूं, स्त्री हूं।

गोपी०—भगवानने सभीके लिये उपयुक्त स्थान दिया है।

मनोरमा—पर शायद वह मुझे स्थान देना भूल गये।

गोपीनाथ बैठे-बैठे सोचने लगा। कुछ देरके बाद उसने स्नेहार्द्र स्वरमें कहा—मनोरमा!

मनोरमाने भी उसी प्रकार कहा—गोपी भैया!

गोपी०—क्या तुम मेरा विश्वास करती हो?

मनो०—अबतक तो अविश्वास करनेकी कोई बात नहीं देखी।

गोपी०—क्या तुम मेरे साथ चल सकती हो?

मनो०—कहां ?

गोपी०—कलकत्ता।

मनो०—उसके बाद ?

मनो०—उसके बाद मुझे जो तनखाह मिलती है, उसीसे तुम्हारे लिये भी एक मुट्ठी अन्न दे सकूंगा।

मनोरमाने आंखे तरेरकर गोपीनाथकी ओर देखा और कहा—क्यों दोगे ?

गोपी०—क्यों, क्या नहीं देना चाहिये ?

मनो०—कोई सम्बन्ध हो तो देना चाहिये।

गोपी०—क्या तुम्हारे साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है ?

मनो०—नहीं, कुछ भी नहीं।

गोपीनाथके हृदयसे सहसा एक ठंडी सांस निकल पड़ी। उसने रूंधे हुए गलेसे कहा—क्या "सम्बन्ध बिना कोई किसीको नहीं खिलाता ?

मनो०—खिलाता है, पर दयावश।

गोपी०—तो क्या दया दिखानेमें कोई दोष है ?

मनो०—हां, यदि उस दयाके साथ स्वार्थका सम्बन्ध हो।

गोपी०—क्या तुम मुझे भी वैसा ही समझती हो ?

मनो०—हां।

गोपी०—क्यों ?

मनो०—संसारमें इतने दुःखी दरिद्रके होते हुए तुम केवल मुझपर ही क्यों दया दिखला रहे हो ?

गोपी०—यदि तुम इतना तर्क वितर्क करोगी तो मैं पार नहीं पा सकूंगा। जाने दो इन सब बातोंको, जरा अपनी हालत तो देखो।

मनो०—मैंने अच्छी तरह सोच विचारकर देख लिया है। मेरे लिये सीधा रास्ता खुला है।

गोपी०—क्या, आत्महत्या?

मनो०—हां,

गोपीनाथ बैठा था। वह उठकर खड़ा हो गया। उसने कर्कश-स्वरमें मनोरमासे कहा—मैं नहीं जानता था कि विधवा होनेपर स्त्री पापिष्ठा हो जाती है। सचमुच मैंने तुम्हें बचाकर अन्याय किया है। जाओ, मरो, तुम्हारा मरना ही उचित है।

गोपीनाथ और अधिक देरतक वहां नहीं ठहरा, वह जल्दीसे उठकर घाटके ऊपर चला आया।

मनोरमाने पुकारा—गोपी भैया!

गोपीनाथ फिर खड़ा हो गया। मनोरमाने कहा—मेरा एक उपकार करोगे?

गोपीनाथने कहा—क्या कहती हो?

मनोरमा—क्या तुम मुझे मेरी सखीके पास पहुंचा सकते हो?

गोपी०—तुम्हारी सखी कौन है?

मनो०—बिसेसर भैयाकी स्त्री।

गोपी०—वह कहां रहती है?

मनो०—कलकत्तेमें।

गोपी०—कलकत्तेमें उसका क्या पता है?

मनो०—नेबूतल्ला ।

गोपी०—उसके घरका नम्बर क्या है ।

मनो०—यह मैं नहीं जानती ।

गोपीनाथने कुछ देर सोचकर कहा—मैं खोजकर पता लगा लूंगा, पर तबतक—

मनो०—तबतक क्या ?

गोपी०—तबतक तुम कहां रहोगी ?

मनो०—तुम्हारे पास ।

गोपी०—बहुत अच्छा, पर क्या तुम्हें मेरा विश्वास होगा ?

मनो०—शायद उतना अविश्वास नहीं कर सकती ।

'बहुत अच्छा' कहकर गोपीनाथ मुस्कराया । उसके बाद वह मनोरमाको साथ लेकर चला ।

यहां गोपीनाथके सम्बन्धमें कुछ कहनेकी आवश्यकता है । बहिनके घरको छोड़कर गोपीनाथ कुछ दिनतक इधर उधर घूमता रहा । धीरे धीरे उसके मनमें एक परिवर्तन आता गया, जिससे उसका चिर अभ्यस्त जीवन एक नूतन पथ अवलम्बन करनेके लिये व्यग्र हो उठा । अब तास जूआ खेलनेमें उसका मन नहीं लगता था । गाना गाते गाते बीचमें ही गानेका अंतरा भूल जाता । बाजा बजाते बजाते ताल कट जाता । गोपीनाथ गांजा, भांग चरस आदिसे रिक्त हो कर कलकत्ता चला गया । वहां उसके गांवके राम-दयाल साहुकी कपड़ेकी दूकान थी । गोपीनाथने कुछ दिनतक उसी दूकानमें काम किया । उसके बाद हबड़ाके मालगुदाममें एक मित्रकी

सिफारिशसे १५) मासिक वेतनपर एक नौकरी ठीक की। दो तीन महीनेके बाद गोपीनाथ प्रायः २०) मासिक उपार्जन करने लगा। तीन रुपये मासिक भाड़ेपर एक कमरा किराया ले रखा था। उसीमें वह रसोई बनाता खाता और सोता भी था।

उसके बाद उसकी अवस्था क्रमशः अच्छी होती गयी। दोस्त-मित्रोंकी भी संख्या बढ़ने लगी। दोस्तोंकी ओरसे कुत्सित आमोद-प्रमोदके प्रलोभन भी आने लगे, पर गोपीनाथका मन जरा भी नहीं डिगा। उसके मनके ऊपर मनोरमाके मुखका जो प्रभाव पड़ा था वह किसी प्रकार हटायेसे भी नहीं हटता था।

इसी तरह सात आठ महीने बीत गये। पर गोपीनाथ मनोरमा-को भूल नहीं सका। उस असहाय विधवाका विषाद-मलिन मुख उसके मानस नेत्रोंके सामने और भी उज्ज्वल दीखने लगा। उसी मुखको फिर एक बार देखनेकी उसकी प्रबल इच्छा होने लगी। केवल देखनेकी इच्छा—दूर अथवा निकटसे केवल देखनेकी आकांक्षा।

इसमें दोष था अथवा नहीं, पर गोपीनाथ अपनी इच्छाका दमन नहीं कर सका। वह एक सप्ताहकी छुट्टी लेकर मनोरमाको देखनेके लिये कलकत्तेसे चल पड़ा।

जब मनोरमाने उससे पूछा कि इधर कहां जा रहे हो तब वह यह नहीं कह सका कि वह उसको ही देखनेके लिये कलकत्तेसे आ रहा है। भला यह बात मनोरमासे कहने योग्य थी? इसीलिये उसने झूठी बात कही कि बहिनको देखने जा रहा हूं।

तेईसवां परिच्छेद

——००——

कलकत्ते आनेपर एक सप्ताह बीत गया। मनोरमा गोपीनाथसे रोज ही पूछती बिसेसर भैयाका कुछ पता चला या नहीं ? गोपीनाथ कहता—अभीतक तो पता नहीं चला, चेष्टा कर रहा हूं।

इस समय मनोरमा ही गोपीनाथके घरका काम-काज करनेवाली थी। मनोरमा भोजन बनाती और गोपीनाथ प्रति दिन प्रसन्न चित्तसे खा-पीकर काम करने जाता। शामको घर लौटते समय वह अपने साथ बाजारसे कुछ जरूरी चीजें खरीदकर ले आता। मनोरमा उन्हें सम्हालकर रखती। कभी-कभी यदि गलतीसे कोई फालतू चीज चली आती तो वह उसके लिये गोपीनाथको खूब फटकारती। उस फटकारमें गोपीनाथको एक अनिर्वचनीय आनन्द मिलता था। जब कभी वह आफिससे देर करके लौटता और मनोरमा उद्विग्नतासे उससे इसका कारण पूछती तो गोपीनाथके हृदयमें आनन्दकी ऐसी तरंगें उठने लगतीं कि वह कुछ उत्तर नहीं दे सकता था। उसके बाद जब वह खाने बैठता और मनोरमा यह खाओ, वह खाओ, कहकर उसे अनुरोध करती तो उसे अपनी आंखोंके आंसुओंको रोकना असम्भव हो जाता। भोजनोपरान्त चारपाईपर लेटकर वह अपने आनन्दमय मनोराज्यमें विचरण करने लगता।

इस बीच जब कभी मनोरमा बिसेसरका पता लगानेके लिये व्यग्रता दिखलाती तब गोपीनाथका कल्पित स्वर्गराज्य मर्त्यलोकमें

परिणत हो जाता। इसी प्रकार स्वर्ग और मर्त्यलोकके बीच गोपी-नाथने एक पखवारा बिता दिया।

एक दिन मनोरमाने बहुत हठ किया। गोपीनाथके आफिससे आते ही उसने पूछा—बिसेसर भैयाका कोई पता चला?

गोपीनाथने पहलेकी ही तरह उत्तर दिया—नहीं।

मनोरमा—खोज-पूछ की है?

गोपीनाथने कुछ इधर-उधर करके कहा—हां, खोज की है, पर…

मनोरमाने किंचित रुष्ट होकर कहा—शायद उनका पता लगना मुश्किल है।

गोपी०—क्यों?

मनो०—कौन खोज करेगा?

गोपी०—मैं।

मनो०—तुम नहीं कर सकते।

गोपी०—कौन कहता है कि मैं नही कर सकता?

मनो०—मैं कहती हूं। गोपी भैया, क्या तुमने मुझे इतनी अबोध बालिका समझ रखी है?

मुस्कराते हुए गोपीनाथने कहा—ना, ना, कभी नहीं।

मनोरमाने क्रोधित होकर कहा—अपनी हंसी रहने दो। साफ-बतलाओ उनकी खोज करोगे या नहीं?

मनोरमाका क्रोध देखकर गोपीनाथके मुखकी हंसी मुखमें ही विलीन हो गयी। उसने कुछ भयभीत सा होकर कहा—क्यों मनो-रमा! क्या तुम्हें यहां कुछ कष्ट हो रहा है?

मनोरमाने पूर्ववत् व्यग्रभावसे कहा—हां, मैं तुम्हारे यहां सुखसे रहनेके लिये नहीं आयी हूं।

गोपीनाथके मुखपर कालिमा छा गयी। उसने अभीतक आफिसके कपड़े भी नहीं उतारे थे। केवल जूते निकाल रखे थे। वह फिरसे जूता पहिनने लगा। मनोरमाने पूछा--कहां जा रहे हो?

गोपीनाथने कहा—बिसेसरजीको खोजने जा रहा हूं।

मनो०--अभी रहने दो।

गोपीनाथ 'नहीं' कहकर जानेको उद्यत हुआ। मनोरमाने कहा—हाथ-मुंह धोकर कुछ जलपान तो कर लो।

गोपी०—लौटकर जलपान करूंगा। यह कहकर वह जल्दीसे चला गया। मनोरमा चुपचाप बैठी रही।

दोपहर रात गये गोपीनाथने लौट आकर देखा कि मनोरमा चिराग जलाये चुपचाप बैठी है। गोपीनाथने कहा--पता मिल गया, मनोरमा! बिसेसरजीसे मुलाकात हुई है।

मनोरमा गोपीनाथकी बातकी ओर कुछ ध्यान न देकर जल्दीसे उठकर भोजन परोसने लगी।

उस दिन गोपीनाथने अच्छी तरह भोजन नहीं किया। मनोरमाने इसे जानते हुए भी गोपीनाथसे इसका कारण जाननेके लिये अनुरोध नहीं किया। गोपीनाथने चुपचाप भोजन समाप्त कर कहा—कल दोपहरको बिसेसरजी अपने नौकरके साथ गाड़ी भेजेंगे। तुम चली जाना, और घरकी चाभी---

गोपीनाथने कहा-चाभीको घरके किसी आदमीके पास रख जाना।

मुंह नीचा किये, पैरके अंगूठेसे जमीन खोदती हुई मनोरमाने कहा--तुम रंज हो गये, गोपी भैया ?

गोपीनाथने विषादभरी मुस्कराहटके साथ कहा--नहीं मनोरमा, यदि तुम मुझसे रंज हो तो माफ करना। और---

मनो०---और क्या ?

गोपी०--और कभी जरूरत पड़े तो अपने गोपी भैयाको याद करना। बहिन जिस तरह भाईका विश्वास करती है, माँ जिस प्रकार पुत्रका विश्वास करती है, वही विश्वास मेरे प्रति अपने मनमें ले आना। तुम देखोगी तुम्हारा गोपी भैया विश्वासघातक नहीं होगा।

गोपीनाथ भोजन करके उठ गया। मनोरमाने देखा कि गोपीनाथ रो रहा है! उसकी आंखोंसे भी आंसू निकल पड़े।

दूसरे दिन शामको उदास मनसे गोपीनाथ घर लौटा। उसके आते ही मकान मालिकके नौकरने उसके कमरेकी चाभी उसे दी। ठंडी सांस लेकर गोपीनाथने कहा--हाय! संसारमें मेरा कोई नहीं है। मैं अकेला ही हूं!

बड़े कष्टसे अपनेको सम्हालते हुए गोपीनाथने अपना कमरा खोला। कपड़े उतारकर वह चारपाईपर लेट रहा। उस रात गोपीनाथ ने कुछ खाया नहीं।

चौबीसवां परिच्छेद
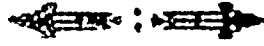
"मेरी सखी कहां गयी, बिसेसर भैया ?"

"वह देश चली गयी।"

"देश चली गयी ?"

"हां, चली गयी, मुझे घृणाके साथ छोड़कर चली गयी।"

मनोरमा चुपचाप बैठी सोचने लगी।

बिसेसरने कहा—मनोरमा !

मनोरमा—क्या कहते हो बिसेसर भैया ?

बिसे०—तुम्हें यहां किसी बातका कष्ट नहीं होगा।

मनोरमाने विस्मयसे बिसेसरकी ओर देखा। बिसेसरने आंखें नीची करके कहा—तुम्हें मैं बड़े आरामसे रखूंगा मनोरमा।

मनोरमाने मुस्कराते हुए कहा—मेरे लिये सुख-दुःख क्या है, बिसेसर भैया !

बिसे०—मनुष्यमात्रको सुख-दुख होता है।

मनो०—तुम्हारे जैसे मनुष्योंको सुख-दुःख होता होगा।

बिसे०—तुम भी तो मनुष्य हो।

मनो०—मैं विधवा हूं।

बिसे०—विधवा होनेसे ही जीवनके सब सुखोंका अन्त नहीं हो जाता।

मनोरमाने सन्दिग्ध दृष्टिसे बिसेसरकी ओर देखकर कहा—तुम

क्या कह रहे हो बिसेसर भैया ? विधवाको भी सुखकी लालसा होती है ? विधवाके लिये तो मरना ही परम सुख है ।

बिसे०—मरना !—मरना तो एक दिन होगा ही, पर जितने दिनतक जिया जाय उतने दिनतक जीवनके सुखसे क्यों वंचित रहा जाय ? जीवन अमूल्य है ।

मनो०—तुम्हारे लिये जीवन अमूल्य हो सकता है, मेरे लिये तो उसकी कीमत एक कौड़ी भी नहीं है ।

बिसेसर चुपचाप सिर नीचा किये बैठा रहा । मनोरमाने कहा—बिसेसर भैया !

बिसेसरने सिर ऊपर उठाकर देखा । मनोरमाने कहा—मैं तुम्हारा बहुत विश्वास करके आयी हूं, बिसेसर भैया !

बिसेसर बैठा था, उठकर खड़ा हो गया । कहा—आयी हो तो अच्छा ही किया है । यहां तुम्हें किसी बातका भय नहीं ।

मनोरमाने मुस्कराकर कहा—भाईके पास बहिनको किस बातका डर ? तुम्हारी स्त्री कहां है ?

बिसे०—शान्ता ? वह मेरे घरमें है ।

मनो०—तो यह किसका घर है ?

बिसे०—यह हीरालालके फूफाका घर है । मैंने किरायेपर लिया है ।

मनो०—क्यों ? क्या तुम्हारे घरमें रहनेकी जगह नहीं है ?

बिसे०—जगह तो है, पर वहां तुम्हारे रहनेमें असुविधा होगी ।

मनो०—कोई असुविधा नहीं होगी, मुझे वहीं ले चलो।

बिसेसरने दरवाजेकी ओर बढ़ते हुए कहा—शान्तासे पूछकर तुम्हें वहां ले चलूंगा।

मनो—पूछकर ? पूछोगे क्यों ?

बिसे०—शायद वह कुछ आपत्ति करे।

मनोरमा उठकर खड़ी हो गयी। उसने कहा—मैंने अपनी सखीसे सुना है कि शान्ता बड़ी भली है। वह अवश्य मुझे रहने देगी।

बिसे०—नहीं मैं जानता हूं वह हरगिज नहीं रहने देगी।

मनोरमाने उत्कण्ठासे पूछा—क्यों ?

बिसे०—उसका वैसा स्वभाव ही है। तुम यहीं रहो न ? तुम्हें किसी बातका कष्ट नहीं होगा।

बिसेसर चला गया। मनोरमा खड़ी-खड़ी सोचने लगी, शान्ता मुझे रहने न देगी ? क्यों ? मैंने क्या किया है ? सोचते-सोचते घोर अन्धकारमें प्रचण्ड बिजलीके प्रकाशकी नाईं उसके मनमें एक बात आयी। मनोरमा उसकी तीव्रताको सहन न कर सकी। वह कांपती हुई वहीं बैठ गयी।

इधर कुछ दिनोंसे बिसेसरने होश सम्हाला था। इस होश संभालनेका कारण था अर्थाभाव। अब बिसेसर दलालीसे उतने रुपये पैदा नहीं करता कि दिल खोलकर मौज उड़ावे।

उसका संचित धन थोड़े ही दिनमें खतम हो गया था। काम करनेमें मन तो लगता ही न था, इसलिये अब आगेके लिये कुछ संचित भी नहीं करता था। अतः उसके हाथ खाली होनेमें देर

नहीं लगी। हाथ खाली होते ही बन्धु-बान्धवोंसे उधार मांगना शुरू किया। किन्तु कलकत्तेमें बिसेसरकी कोई स्थावर सम्पत्ति नहीं थी जिससे उसे अधिक रुपये मिल सकते। दोस्त-मित्रोंने पांच सात रुपये देकर अपना हाथ खींच लिया। इधर जोहरा बाईका तकाजा भी बड़े जोरोंसे होने लगा।

जब और उपाय बाकी न रहा तब अन्तमें बिसेसरने शान्ताके गहनोंपर हाथ दिया। शान्ताने बिना किसी प्रतिवादके दो-एक गहने दे दिये। किन्तु जब एक-एक करके प्रायः सब गहने बिक गये तब एक दिन उसने प्रतिवाद किया। क्यों न प्रतिवाद करे, क्या कोई स्त्री अपने गहने बेंचकर स्वामीके वेश्यालयका खर्च चला सकती है? बिसेसरने क्रोधित होकर शान्ताको बड़ी डांट-फटकार सुनायी। शान्ताने भी जो कभी नहीं किया था उस दिन वही किया। उसने स्वामीके साथ खूब सवाल-जवाब किये। बिसेसरने आवेशमें नशेके झोंकसे धैर्यच्युत हो शान्ताको डंडेसे खूब पीटा। रुग्ण शान्ताने मार खाकर खाट पकड़ ली। नशा दूर होनेपर बिसेसर शान्ताकी अवस्था देखकर शंकित हो गया।

इधर कई एक महाजनोंने हैंडनोटोंकी मियाद डूबती देखकर नालिश कर दी। बिसेसरके पास क्या था जिससे वह ऋण चुकाये। शान्ताने रोग-शय्यापर लेटे ही सब हाल सुना। सुनकर उसने गहनोंके बक्सकी चाभी बिसेसरको दे दी। बिसेसरने स्त्रीके गहनोंको बेंचकर कुछ-कुछ रुपये चुका दिये।

उसके बाद बिसेसरने निश्चय किया कि अब अपने जीवनको

गति परिवर्तित करूंगा । काममें मन लगाकर चरित्रकी दुर्बलताको सुधार लूंगा। यह निश्चय कर उसने फिर काममें मन लगाया। किन्तु पहलेकी तरह आमदनी नहीं होती। तो भी जो कुछ उपार्जन होता था, यदि हिसाबसे खर्च किया जाता तो उसका जीवन सुखपूर्वक व्यतीत हो सकता था। जिस दिन अधिक आमदनी होती, उस दिन वह अपना संकल्प स्थिर नहीं रख सकता था। जोहरा बाईके घर जाकर अपनी जेब खाली कर देता और नशेमें चूर हो घर लौटता। शान्ता अपने रोग जर्जरित शरीरको किसी प्रकार खड़ा रखकर स्वामीकी सेवा-टहल करती उसकी निःस्वार्थ सेवा, असीम स्नेह, निर्मल प्रेमको देखकर बिसेसर कभी-कभी शान्ताके सामने ही रो उठता। शान्ता स्वामीको बहुत समझा-बुझाकर सांत्वना देती ; किन्तु उससे बिसेसरके हृदयकी ज्वाला और भी बढ़ जाती।

बिसेसरके मनकी जब ऐसी अवस्था थी उसी समय गोपीनाथने उसे मनोरमाकी खबर दी और यह भी बतलाया कि मनोरमा उसके ही आश्रममें रहनेके लिये आयी है। बिसेसर मनोरमाको लड़कपनसे ही जानता था, पर इधर पांच वर्षोंसे उसने उसे देखा नहीं था। गोपीनाथके मुंहसे उसकी दुःख-कहानी सुनकर बिसेसर उसे अपने घर लिवा लानेको राजी हो गया। किन्तु गोपीनाथके चले जानेपर हीरालालने बिसेसरको समझाया कि केवल इसी छोकरेका विश्वास कर मनोरमाको एक-ब-एक अपने घरमें रहने देना उचित नहीं है।

बिसेसरने कहा—तब उसे कहां रखा जाय ?

हीरालालने कहा—मेरे फूफाका मकान खाली है, चलो तबतक उसे उसी जगह रखा जाये। उसके बाद यदि देखा जायगा कि उस-का चरित्र बिलकुल निर्दोष है, तब उसे अपने घरमें बुला लेना ; नहीं तो अन्तमें सिरपर कलंकका टीका लगाना पड़ेगा।

बिसेसर वैसा ही करनेको राजी हो गया।

मनोरमा आनेपर उसी मकानमें रखी गयी। बिसेसरने जब मनोरमाको देखा था तब वह बालिका थी। उसके बाद पांच-छः वर्ष बीत गये। इतने दिनोंके बाद मनोरमाको देखकर बिसेसर स्तम्भित और विमुग्ध हो गया। उसने उसे सुखसे रखनेके लिये पूरी चेष्टा की। खाने-पीनेका पूरा प्रबन्ध कर दिया। पर शान्ताको इन सब चीजोंकी आवश्यकता नहीं थी। उसे तो एक निर्भय आश्रयकी आवश्यकता थी। किन्तु उसे शीघ्र ही ज्ञात हुआ कि वह जिस चीज-को चाहती है, यहां उसके मिलनेकी सम्भावना नहीं है। उसे अपने चिर परिचित बिसेसर भाईका भी विश्वास नहीं होता। जिसे चन्दनकी शीतल छाया समझकर वह आयी थी, उसे वह ज्वालामय विषका वृक्ष प्रतीत हुआ। हाय! कुटिल संसार! कुटिल संसारके चक्करमें पड़कर केवल मनोरमाने ही नहीं, बिसेसरने भी भूल की। मनोरमाके हृदयकी दृढ़ताका परिचय पाकर भी पापात्मा बिसेसरने आशा नहीं त्यागी। उसने सोचा—मेरा धन गया, सम्मान गया, चरित्र गया, दुलारी गयी, शान्ता भी जाना ही चाहती है। अब भी अगर मनोरमाको वशमें कर लूंगा तो मेरे हृदयको शान्ति मिलेगी। बिसेसरने विषके ऊपर विषपानकर नीलकंठ होनेका संकल्प किया।

पच्चीसवां परिच्छेद

"तुम क्या चाहती हो, मनोरम !"

"कुछ नहीं !"

"कुछ भी नहीं ?"

"नहीं ! हां, एक चीज चाहती हूं ।"

"कहो, क्या चाहती हो ? जो तुम चाहोगी वह मैं तुम्हें दूंगा ।'

"दोगे ?"

"अवश्य !"

मनोरमा मुस्कुरायी । उसकी मुस्कुराहटमें मधुरिमा नहीं थी, कठोरता थी । आनन्द नहीं था, विषादकी करुणा थी । मनोरमाने कहा—मैं चाहती हूं, अपने बिसेसर भैयाको ठीक बिसेसर भैयाके रूपमें देखना ।

बिसेसर मनोरमाके मुंहकी ओर ताकता रहा—मनोरमाने फिर कहा—नहीं समझ सके ?

बिसेसर—समझ गया, किन्तु अब वैसा नहीं हो सकता ।

मनोरमा—तब क्या हो सकता है ?

बिसेसर—तुम मेरी होकर रहो ।

मनोरमा—मैं तो तुम्हारी ही हूं । तुम मेरे भाई हो और मैं तुम्हारी छोटी बहिन ! मेरा भी एक अनुरोध है, तुम मनुष्य बनो ।

बिसेसर—तुम्हें पाकर मैं मनुष्य बन जाऊंगा ।

मनोरमा—दुलारी जैसी स्त्रीको पाकर मनुष्य नहीं बने, शान्ताको पाकर मनुष्य नहीं बने, एक वेश्याको लेकर अधःपतनकी चरम सीमा पर पहुंचकर मनुष्य नहीं बने, अब अन्तमें एक विधवाको लेकर मनुष्य बनने चले हो ?

बिसे०—मैं तुम्हें साथ लेकर यहांसे और कहीं चला जाऊंगा ?

मनो०—कहां ?

बिसे०—काशी ।

मनो०—हां, तुम्हारे लिये वहीं जाना उचित होगा। वहीं जाकर विश्वनाथके चरणोंमें पड़कर अपने पापोंकी क्षमा-याचना करो ।

बिसे०—मैं तुम्हें भी अपने साथ ले जाऊंगा ।

मनो०—शान्ता और दुलारी कहां जायंगी ?

बिसे०—चूल्हेमें ।

मनो०—जो अपनी विवाहिता स्त्रीको चूल्हेमें डाल सकता है, उसका क्या ठिकाना कि वह दो दिनके बाद मुझे भी यमलोक न भेज दे ।

बिसेसर उठकर खड़ा हो गया । शराबके नशेमें मतवाला हो दोनों हाथ बढ़ाकर वह मनोरमाको पकड़नेके लिये आगे बढ़ा ।

"खबरदार, बिसेसर भैया !"

मनोरमाके वज्र जसे कठोर स्वरसे सहम कर बिसेसर वहीं खड़ा रह गया ।

"आज तुमने कितनी शराब पी है, बिसेसर भैया ?"

"शराब ? हां, ना पी है, बहुत नहीं—पी है ।

मनोरमाने हंसते हुए आकर विसेसरका हाथ पकड़ा। विसेसर अवाक् हो गया। मनोरमाने विसेसरका हाथ पकड़ चारपाईपर लाकर उसे सुला दिया। उसके मुंह और आंखोंपर पानीके छींटे, मार पंखा झलने लगी। रुद्ध कण्ठसे विसेसरने कहा—मनोरमा!

मनोरमाने स्निग्ध स्वरमें कहा—विसेसर भैया!

विसे०—तुम कौन हो?

मनो०—तुम्हारी छोटी बहन।

विसे०—तुम मुझसे भय नहीं करती?

मनोरमाने हंसकर कहा—यदि भाईसे भय करूं, तो मैं निर्भय कहां रह सकूंगी?

विसेसर कुछ देरतक सोचता रहा। उसके बाद एक दीर्घ निःश्वास लेकर उसने कहा—तुम कहां रहना चाहती हो?

मनो०—तुम्हारे पास।

विसे०—मेरे पास तुम्हारा रहना न हो सकेगा।

मनो०—क्यों?

विसे०—अपने ऊपर मेरा स्वयं विश्वास नहीं है।

मनो०—मेरा तो तुम्हारे ऊपर विश्वास है।

विसे०—किन्तु मैं यहां नहीं रहूंगा। क्या तुम्हारे रहनेके लिये और कहीं स्थान है?

कुछ सोचकर मनोरमाने कहा—है? मुझे गोपी भैयाके पास भेज दो, विसेसर उठकर खड़ा हो गया। कहा—अच्छा, एक बात और है?

मनो०—क्या ?

विसे०—तुम अपने विसेसर भैयाको भूल जाओ—केवल आजकी घटनाको नहीं, बल्कि विसेसरके नामको ही अपनी स्मृतिसे मिटा दो।

यह कहकर विसेसर नीचे चला गया। नीचेके एक कमरेमें हीरालाल सो रहा था, विसेसरने जाकर उसे जगाया और उसे अपने साथ लेकर बाहर चला गया। हीरालालने पूछा—कहो, कैसा रंग ढंग है ?

बिसेसरने उसकी बातका उत्तर न देकर कहा—गोपीनाथके घरका पता जानते हो ?

हीरा०—कौन ? उस छोकरेका ?

बिसे०—हां।

हीरा०—जानता हूं।

बिसे०—कल मनोरमाको उसके पास पहुंचा आना।

विस्मित होकर हीरालालने कहा—बात क्या है ?

विसेसरने कहा—कुछ भी नहीं। यदि तुम नहीं पहुंचा सको तो ठिकाना मुझे बतलाओ, मैं ही उसे पहुंचा आऊंगा, उसके बाद यहांसे यात्रा करूंगा।

हीरा०—यह कौनसी बड़ी बात है। मैं ही पहुंचा आऊंगा, किन्तु तुम जाओगे कहां ?

विसे०—कहां जाऊंगा, अभी ठीक नहीं; पर अब यहां न रहूंगा।

कुछ दूर और जाकर दोनों दो रास्तेसे चले।

घर पहुंचकर बिसेसरने शान्ताको बुलाकर कहा—क्या तुम अपने पिताके घर जाओगी ?

शान्ताने विस्मित होकर पूछा—क्यों ?

बिसे०—एक काम है। बोलो, जाओगी कि नहीं ?

शान्ता०—नहीं जाऊंगी।

बिसे०—तब कहां रहोगी ?

शान्ता—क्यों, यहीं रहूंगी।

बिसे०---यहां किसके साथ रहोगी ?

शान्ता—तुम्हारे साथ।

बिसे०—मेरे साथ तुम्हारा रहना नहीं होगा।

शान्ताने विस्मयसे पूछा—तुम कहां जाओगे ?

बिसेसरने झुंझलाकर कहा—चूल्हेमें।

शान्ताने क्षुब्ध होकर कहा—मैं भी वहीं जाऊंगी।

बिसेसरने व्यंगसे कहा—हां, तुम यही न करोगी, नहीं तो मेरी ऐसी दुर्गति कैसे होती ?

शांताने विस्मयसे पतिके मुंहकी ओर देखते हुए डरते-डरते कहा—क्यों ? मैंने क्या किया है ?

पत्नीकी ओर क्रुद्ध कटाक्ष करते हुए बिसेसरने कहा—जो तुमने किया है, वह मेरा बड़ेसे बड़ा शत्रु नहीं कर सकता। यदि तुम स्त्रीकी तरह मेरी स्त्री होती, तो मेरा इतना अधःपतन नहीं होता।' तुम्हीं मेरी दुर्गतिका मूलकारण हो। बड़ी अशुभ घड़ीमें दुलारीको छोड़कर तुम्हें ग्रहण किया था।

शान्ताने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह डबडबाई आंखोंसे स्वामीके मुखकी ओर देखती रही। वह नहीं जानती थी कि मनुष्य अपने अपराधके दायित्वको दूसरेके कन्धेपर लादकर बहुत कुछ निश्चिन्त हो जाता है।

शान्ताकी वह कातर दृष्टि देखकर बिसेसरका हृदय द्रवित हो गया। उसने अपेक्षाकृत कोमल स्वरमें कहा—सुनो शान्ता, मेरा अधःपतन जितना होना था, उतना तो हो गया। आज मैं जो भयानक कांड करने गया था उसकी चर्चा चलाने योग्य नहीं। तुम दुलारीकी सखी मनोरमाको जानती हो? शायद नहीं जानती। अच्छा रहने दो, जाननेकी जरूरत भी नहीं। मैंने संकल्प किया है कि अब मैं यहां नहीं रहूंगा; क्योंकि यदि मैं रहूंगा तो मेरा चरित्र किसी भी तरह नहीं सुधरेगा। जितना शीघ्र हो सकेगा, मैं यह शहर छोड़ दूंगा।

शान्ता भय और विस्मयसे अवाक् थी। बसेसरने कहा—रंज मत हो शान्ता, मेरा दिमाग ठीक नहीं है। यदि मैंने तुम्हें कोई कड़ी बात कही हो तो—

शान्ताकी आंखोंमें आंसू छलछला आये। उसने आंसुओंको आंचलसे पोंछकर व्यथित स्वरमें पूछा—तुम कहां जाओगे?

बिसे०—कुछ ठीक नहीं कि कहां जाऊंगा।

मनो०—कब लौटोगे?

बिसे०—यह भी कुछ ठीक नहीं। जब मैं अपने चरित्रको ठीक कर मनुष्य हो सकूंगा, तभी लौटूंगा; नहीं तो नहीं।

शान्ताने कुछ आगे बढ़कर स्वामीका हाथ पकड़ लिया। उसने भय-कम्पित स्वरमें कहा--नहीं, नहीं, तुम कहीं मत जाओ।

बिसेसरने कहा—नहीं जानेसे मेरा चाल-चलन नहीं सुधर सकता।

शान्ताने कातर स्वरमें कहा—नहीं सुधर सकता तो मत सुधरे, पर तुम जाओ मत।

बिसेसरने अपना हाथ छुड़ाकर कहा—चुप रहो, तुम्हींतो मेरे अधःपतनका कारण हो।

शान्ता वहीं बैठ गयी, स्वामीके दोनों पावोंको पकड़ कर रोते-रोते उसने कहा--तुम्हारी जो इच्छा हो करो, परन्तु तुम कहीं जाओ मत।

क्रोधके मारे दांत पीसते हुए बिसेसरने कहा--हट, जाओ मेरा पैर छोड़ दो बिसेसर शान्ताके हाथोंसे अपने पैरोंको छुड़ाकर घर बाहर चला गया। सामने चिराग टिमटिमा रहा था। शांता गालपर हाथ दिये उस टिमटिमाते चिरागकी ओर देखती हुई बैठी थी।

दूसरे दिन शामको जिस समय बिसेसर यात्रा करनेकी तैयारी कर रहा था, उसी समय हीरालालने आकर उससे मुलाकात की बिसेसरने पूछा--मनोरमाको भेज दिया?

हीरालालने कहा--नहीं, अभी तक तो नहीं भेजा है।

बिसेसरने विरक्त भावसे पूछा—क्यों?

हीरा०---भेजनेकी कोई जरूरत नहीं।

बिसे०—जरूरत नहीं!

मुस्कराकर हीरालालने कहा—मैं विधवा-विवाह करनेके लिये राजी हूं।

विसेसरने भौंहें चढ़ाकर कहा---तुम तो नरक जानेके लिये भी राजी हो सकते हो, पर मनोरमा—

हीरा०—मनोरमाके राजी हुए बिना मैं क्या जबरदस्ती उससे विवाह करने जा रहा हूं ?

विसे०---असम्भव ?

हीरालालने कहा—स्त्रीके चरित्रमें क्या सम्भव है और क्या असम्भव है, यही समझना मेरे-तुम्हारे जैसे आदमियोंके लिये असम्भव है, बिसेसर भाई।

बिसेसर चुपचाप कुछ सोचने लगा। हीरालालने कहा—इस असम्भव बातको जब तुम अपने कानोंसे सुनोगे तो तुम्हें विश्वास हो जायगा।

हीरालालका हाथ पकड़कर विसेसरने कहा—यह बात है ? तब चलो।

हीरालालने एक पग आगे बढ़कर मुसकराते हुए कहा—मैं भी इसीलिये आया था बिसेसर ! मुझे मालूम था कि तुम आज रातकी ही ट्रेनसे चले जाओगे ; किंतु तुमसे मिलकर सब बातें तय करनेकी आवश्यकता थी, ताकि बाद फिर कोई कोई गड़बड़ी न हो। मनोरमाकी भी इच्छा—

विसेसरने आंखें तरेरकर हीरालालकी ओर देखा और कहा—क्या इच्छा है ?

हीरालालने कहा—उसकी यह इच्छा है कि यहां उसका कोई अभिभावक नहीं है। इसलिये तुम्हीं उसे शास्त्रानुसार ग्रहण कर लो।

विसे०--तुम जहन्नुममें जाओ।

यह कहकर विसेसरने हीरालालका हाथ छोड़ दिया। हीरालालने पूछा---तुम चलोगे नहीं ?

"नहीं" कहकर विसेसर बैठ गया। हीरालालने कुछ इधर-उधर करनेके बाद कहा--किन्तु चलनेसे अच्छा होता विसेसर।

क्रोधित होकर विसेसरने कहा—तुम यहांसे दूर हो जाओ।

हीरालाल अपना-सा मुंह लटकाये बाहर चल गया। विसेसर यदि उसका पीछा करता तो देखता कि हीरालालका मुंह किस प्रकार सफलताकी प्रसन्नतासे खिल उठा है। वह बिजलीकी नाईं किस प्रकार गर्वसे सिर ऊपर उठाये जा रहा है। किन्तु विसेसरको यह देखनेकी इच्छा नहीं थी। वह गत रात्रिको मनोरमाको देवीके आसनपर बिठा चुका था। उसे अपने ही मुंहसे इस राक्षसी विवाहके सम्बन्धमें सम्मत्ति देनेकी बिल्कुल प्रवृत्ति न थी। हीरालालकी बात सुनकर वह मनोरमाके ऊपर जल-भुन गया। उसकी इच्छा हो रही थी कि यदि किसी उपायसे इस जघन्य जातिको संसारसे विलुप्त कर दिया जा सके तो संसारका महान् मंगल हो सकता है।

विसेसरमें यदि कुछ भी विचार-शक्ति होती तो हीरालालके इस कपटको घृणाकी दृष्टिसे देखता, किन्तु अनेक कारणोंसे उसमें वह शक्ति नहीं थी, इसलिये उसने हीरालालकी बातको सत्य मान लिया। विसेसर कुछ देरतक दोनों हाथोंपर अपना सिर रखकर बैठा रहा। उसके बाद कागज-कलम लेकर पत्र लिखने लगा।

छब्बीसवां परिच्छेद
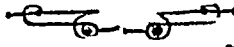
हीरालालने कहा—तुम विवाह करलो, मनोरमा !

मनोरमा—मैं ? मैं तो विधवा हूं। क्या विधवाका भी विवाह होता है ?

हीरालाल—हां, विधवाका भी विवाह होता है।

मनो०—चमार-दुसाधके घर विधवाका विवाह होता है, ब्राह्मण क्षत्रीके घर नहीं।

हीरा०—तुम जानती नहीं, ब्राह्मण-क्षत्रीकी विधवाका भी विवाह होता है। यह धर्मशास्त्रका मत है।

मनो०—मैं शास्त्रकी बात नहीं समझ सकती।

हीरा०—मैं तुम्हें समझा दूंगा।

मनो०—पर मैं समझना नहीं चाहती।

हीरा०—तुम्हें समझना चाहिये। अभी तुम्हारी थोड़ी उम्र है। सुन्दर रूप है।

मनो०—मरनेपर ये सब जलकर राख हो जायंगे।

हीरा०—किन्तु जीवित रहकर इन्हें जलाकर राख कर देना ठीक नहीं। विधाताके दानको इस प्रकार नष्ट कर देना महापाप है।

मनो०—और विधवा विवाह ही कौन-सा महापुण्य है ?

हीरा०—जिससे दुःख हो, वही पाप है, जिससे सुख हो, वही पुण्य है। विवाह करनेसे विधवा पुनः सुखी हो सकती है।

मनो०—तो आपकी रायमें विवाहमें ही सुख है ?

हीरा०—निश्चय।

मनो०—तो मेरी सखी इतनी दुखी क्यों है ? क्या आप बतला सकते हैं ?

हीरा०—वह अपने कर्मोंका फल भोग रही है।

मनोरमाने कहा—तो शायद विधवायें कर्मफलके अधीन नहीं हैं ?

अपने उत्तरसे आप ही पराजित होकर अपनी लाज छिपानेके अभिप्रायमें हीरालालने कहा—ये सब बड़ी गूढ़ बातें हैं; जल्दी समझमें नहीं आ सकतीं। यदि समझना चाहती हो तो और किसी दिन समझा दूंगा।

मनोरमाने कहा—यह न कर यदि आप मुझे गोपी भैयाके पास पहुंचा दें, तो बहुत ही अच्छा हो।

हीरा०—कौन ? गोपीनाथ ? वह तो यहांसे भाग गया।

मनोरमाने विस्मयसे कहा—भाग गया ?

हीरा०—हां, वारण्टके डरसे भाग गया।

मनो०—वारण्ट ! किसका वारण्ट ?

हीरा०—तुम्हारे बापने उनके नाम वारण्ट निकाला है।

मनो०—उसने क्या कसूर किया है ?

हीरा०—वह तुम्हारे बापके पाससे तीन सौ रुपयोंके गहनोंके साथ तुम्हें भगा ले आया है।

मनोरमाने झिझककर कहा—बिलकुल झूठी बात है। मैं अपनी राजी खुशीसे उसके साथ आयी हूं।

हीरालालने मुस्कराकर कहा—पर लोग तो ऐसा नहीं कहते।

मनोरमाने कहा—लोग क्या कहते है ?

हीरा०—लोग कहते हैं, उसीने तुम्हें भगाया है।

यह सुनते ही मनोरमाका हृदय कांप उठा। वह चुपचाप बैठकर सोचने लगी ; हीरालाल मन ही मन प्रसन्न होकर सोच रहा था कि दवाने काम किया ।

कुछ सोचनेके बाद मनोरमाने कहा—मुझे बिसेसर भैयाके घर पहुंचा दो।

हीरालालने कहा—बिसेसर भाई तो कल रातको ही गाड़ीसे कहीं चले गये।

मनो०—घरपर उनकी स्त्री तो है।

हीरा०—नहीं स्त्री अपने मायके है।

मनोरमाने देखा कि उसे रहनेके लिये कहीं जगह नहीं है। अब रास्तेपर पड़ी रहनेके सिवा और कोई उपाय नहीं है। हाय ! उसने गोपीनाथका क्यों अविश्वास किया ? उसके स्नेह भरे हृदयका तिरस्कार कर क्यों चली आयी ?

हीरालालने कहा—क्या सोच रही हो ?

मनोरमा—सोच रही हूं कि और कोई उपाय है या नहीं।

हीरा०—विवाह कर लेनेके सिवाय और कोई उपाय नहीं है।

मनो०—एक उपाय है।

हीरा०—क्या ?

मनो०—मरण।

हीरालालने चौंककर कहा—क्या आत्महत्या करोगी ?

मुस्कराकर मनोरमाने कहा—अन्तमें यही करना होगा। और तुमने सुना ही होगा, मुझमें कितना साहस है।

हीरालालने कहा—साहस रहते हुए भी तुम वैसा नहीं कर सकोगी।

मनो०—क्यों नहीं कर सकूंगी ?

हीरा०—यह तुम्हारा निर्जन गांव नहीं है—कलकत्ता शहर है। यहां चारों ओर पुलिसका पहरा है। गंगामें डूब मरने जाओगी, तो पुलिस तुम्हें पकड़ लेगी।

मनो०—क्या गंगामें डूब मरनेके सिवा और कोई रास्ता नहीं है ?

हीरा०—है क्यों नहीं ? अफीम खाना, विष खाना। पर यहांके बड़े-बड़े डाक्टर तुम्हारे पेटसे विष निकाल लेंगे। उसके बाद तुम्हें पुलिसके सुपुर्द कर देंगे। फिर तुम्हें आत्महत्याकी चेष्टाके अपराधमें जेल जाना होगा।

मनोरमा सिहर उठी। पर थोड़ी ही देर बाद संभल कर उसने कहा—तुमने तो मुझे सब कुछ समझा बुझा दिया, पर जो मरना चाहे उसे कौन रोक सकता है ?

उत्तेजित होकर हीरालालने कहा—मैं रोक रखूंगा।

उपहासकी हंसी हंसते हुए मनोरमाने कहा—तुम रोक रखोगे ? यदि मैं आंचलसे अपना गला बांधकर मर जाऊं, यदि विष खाकर मैं मर जाऊं, यदि दो-तल्लेपरसे गिरकर मर जाऊं, तो क्या तुम रोक सकोगे ?

हीरालालने भयभीत होकर कहा—मनोरमा, तुम क्यों मरोगी? क्या तुम्हारे लिये सुख कहीं भी नहीं है?

मनो०—मेरा सुख तो कबका लोप हो गया है।

हीरा०—मैं तुम्हें सुखी करूंगा।

मनो०—तुम्हारे जैसे सैकड़ों राक्षसोंकी चेष्टासे मैं कभी सुखी नहीं हो सकती। मरनेमें ही मुझे सुख है, मैं मरना चाहती हूं।

दीर्घ निःश्वास लेकर हीरालालने कहा—नहीं-नहीं, मनोरमा! ऐसा मत करो। मरनेका संकल्प त्याग दो।

मनोरमा हृदयकी दारुण व्यथाको सहन न कर सकी। उसकी आंखोंसे छल छल आंसू बहने लगे।
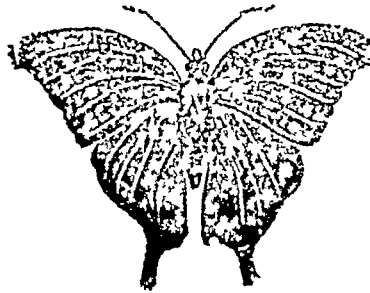
सत्ताईसवां परिच्छेद

दुलारीको बिसेसरका एक पत्र मिला। बिसेसरने लिखा था—

"दुलारी, तुमने रंज होकर मुझे त्याग कर अच्छा ही किया। यदि तुम ऐसा न करती तो शायद आज मुझे तुमको छोड़ देना होता। क्या यह तुम्हारे लिये कष्टकर नहीं होता?

तुमने रंज होकर मुझे त्याग दिया, आज मैंने रंज होकर संसारको त्याग दिया। तुम्हें यहांके दो समाचार दे रहा हूं। एक तो मनोरमा यहां आयी है, सुनते हैं वह विवाह करने जा रही है। दूसरा यह कि शान्ता मृत्यु-शय्यापर पड़ी हुई है। इस अभागिनीका नाम लेनेसे मेरा शरीर जल-भुन जाता है, और आंखोंमें आंसू भर आते हैं। मेरे जीवन-नाटकको वियोगान्त करनेके लिये ही वह आयी थी। उसका काम पूरा हो गया। यदि तुमसे हो सके तो आकर तुम उसके जीवन-नाटकका यवनिकापात देख जाओ।

मैं तो जा रहा हूं, कहां, कह नहीं सकता। तुमसे भेंट करनेकी सम्भावना नहीं। तुम अपने गर्वको लिये रहो। मैं तो सब कुछ फेंक फांक कर जा रहा हूं।

तुम्हारा—

बिसेसर!"

पत्र पढ़कर दुलारी बहुत देरतक संज्ञाहीनकी नाईं बैठी रही। उसके गर्वकी मात्रा इतनी भयावह होगी, उसने इसकी कल्पनातक

भी न की थी, किन्तु आज उसी कल्पनातीत विषयने उसके हृदयमें ऐसा भीषण आघात किया कि वह किसी प्रकार भी अपनेको संभाल न सकी। उसकी आंखोंसे आंसुओंकी धारा बह चली। दुलारीने सोचा, कि बिसेसरके किये हुए पापका प्रायश्चित्त हो गया। अब उसके गर्वका प्रायश्चित्त हो रहा है।

और शान्ता! बेचारी अबोध बालिका हंसते-हंसते आयी थी, अब वह रोती हुई जा रही है।

मनोरमा विवाह कर रही है? बिल्कुल असम्भव! किन्तु उन्होंने तो झूठी बात नहीं लिखी है। तो भी विश्वास नहीं होता? हाय अभागिन विधवा! दूसरे दिन दुलारी घनईकी मांके साथ कलकत्ते के लिये रवाना हो गयी।

कलकत्ता पहुंचकर दुलारीने देखा कि बिसेसरकी बात यथार्थ है। शान्ताके जीवन नाटकका अन्तिम दृश्य आरम्भ हो गया है, परदा गिरनेमें अधिक देर नहीं। उसके आठ महीनेका गर्भ था, तिस पर ज्वर और खांसी। शरीरमें सिवा हड्डीके और कुछ नहीं था। शांताकी दशा देखकर दुलारी रो पड़ी, किन्तु बहिनको देखकर रुग्ण शान्ताका चेहरा प्रसन्नतासे खिल उठा।

पर उसकी प्रसन्नता अधिक देरतक नहीं रही। स्वामीका प्रसंग छिड़ते ही दुलारीका गला पकड़कर शान्ता फूट-फूटकर रोने लगी। दुलारी भी रुलाई न रोक सकी।

रोते रोते शान्ताने कहा—अब क्या होगा, बहिन?

दुलारीने आंखोंके आंसू पोंछकर सौतको आश्वासन देते हुए

कहा—क्या करोगी बहिन ? चिन्ता मत करो। नाराज़ होकर गये हैं, नाराज़ी दूर होते ही फिर चले आयेंगे।

शांताने व्यथा भरे स्वरमें कहा—किसके ऊपर नाराज होकर गये हैं, बहिन ! मैंने तो उन्हें कुछ कहा भी नहीं है।

दुलारीने ठंडी सांस लेकर कहा—तेरे ऊपर नहीं शान्ता, मेरे ऊपर रंज होकर वे गये हैं।

शान्ता कुछ समझ न सकी कि किस लिये स्वामी बहिनके ऊपर नाराज़ हुए हैं।

कलकत्तेमें बिसेसरका अपना मकान नहीं था। वह किरायेके मकानमें रहता था, इसलिये दुलारीने वहां रहना उचित नहीं समझा। उसने शांताको उसके बापके घर भेजनेका प्रस्ताव किया। किन्तु शांता राजी नहीं हुई। उसने कहा—बहिन, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, तुम मुझे अपने ही पास रहने दो। तुम्हारी गोदमें सिर रखकर यदि मैं मरूंगी——

दुलारीने उसके मुंहको हाथसे बन्द करते हुए डांटकर कहा—चुप रह अभागिन, क्यों फजूलकी बातें बक रही है ?

शान्ता खिलखिलाकर हंस पड़ी।

घरका कुछ माल असबाब बेचकर, कुछ बांध-बूंधकर अपने साथ ले, घरका भाड़ा और नौकर चाकरकी तनख्वाह चुका कर वह दुलाराके साथ देश लौट आयी। यहां आकर उसने एकबार मनोरमाका पता लगानेकी चेष्टा की, पर कोई उपाय नहीं मिला।

घर आकर दुलारीने शान्ताकी दवा-दारूका प्रबन्ध किया। पर
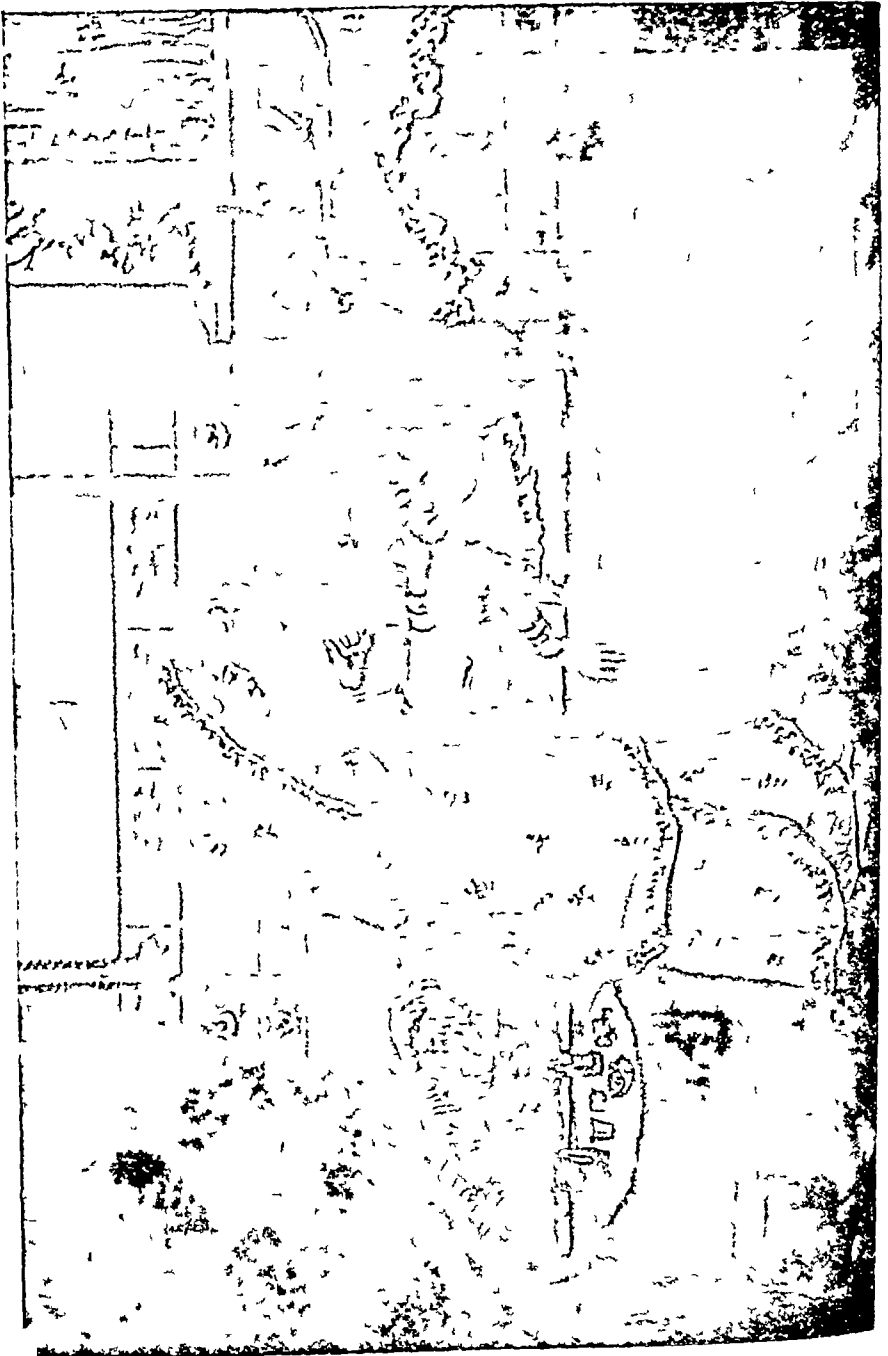
चिकित्साका कोई फल नहीं दिखाई दिया। शान्ताकी अवस्था दिन-दिन शोचनीय होती गयी।

वैद्यने कहा—रोग मानसिक है। दैहिक रोगकी दवा तो मैं दे सकता हूं, पर मानसिक व्याधिके लिये कहांसे औषधि लाऊंगा? दुलारी यह बात अच्छी तरह जानती थी, पर जानते हुए भी वह उसके जीनेकी आशासे उसकी चिकित्सा करा रही थी। शान्ताको अब दवा खानेकी इच्छा नहीं होती थी। दुलारी कभी डरा-धमकाकर, कभी आदरसे उसे दवा पिलाती थी। शान्ता बार-बार यही पूछा करती—बहिन, क्या वह सचमुच नहीं लौटेंगे?

दुलारी उसे आश्वासन देती हुई कहती—जरूर आयेंगे। मेरी प्यारी बहिन, तुम चिन्ता मत करो, वे अवश्य लौट आयेंगे।

शांता कहती—किन्तु बहिन, यदि इस बार वह लौट आयें तो तुम फिर उनसे रंज मत होना। मैं उनके मनके मुताबिक कुछ भी नहीं कर सकती। इसीलिये रंज होकर वे चले गये हैं।

दुलारीने आंखोंके आंसुओंको बड़े कष्टसे रोकते हुए कहा--और तुम?

शान्ताने सूखे ओठोंपर म्लान हंसीके साथ कहा—मैं? मेरा तो यमराजके यहांसे बुलावा आ गया है बहिन! और मेरे रहनेसे तो वे प्रसन्न भी नहीं होंगे। मैं केवल तुम्हारे ही सुखके मार्गमें कांटा नहीं हूं, उनके भी सुखके मार्गमें कांटा हूं।

दुलारीने भौंहें चढ़ाकर कहा—देखो, शान्ता, अगर ऐसी बात कहोगी, तो मैं यहांसे उठकर जहां जीमें आयगा, चली जाऊंगी।

शान्ताने मुस्कराते हुए कहा—अच्छा बहिन, मैं तुम्हें छोड़कर स्वर्ग भी नहीं जाना चाहती। दुलारीने शान्ताको छातीसे लगा लिया।

यथासमय शान्ताके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। दुलारीको उस छोटेसे बच्चेको गोदमें लेनेपर एक अभूतपूर्व सुखका आस्वाद मिला। किन्तु प्रसवके बाद ही शांता जो चारपाईपर पड़ी, फिर उसे अपने बच्चेको गोदमें भी लेनेका सौभाग्य न प्राप्त हुआ। जब दुलारी शान्ता को गोदमें लेनेके लिये बच्चेको देती तो वह कहती—बहिन, यह तुम्हारा बच्चा है, तुम इसे जो और यदि हो सके तो—

कहते कहते उसकी आंखोंसे छल-छल आंसू बहने लगते। फिर आसुओंको पोंछकर वह कहती—और यदि हो सके तो इसे उनकी भी गोदमें देना।

दुलारी मुंहसे तो शांताको धमकाती, पर हृदयमें फूट फूटकर रोती।

अरे निष्ठुर! इस कोमल कुसुमको पद-दलित करनेके लिये ही क्या इसे सादर ग्रहण किया था? इस बालिकाकी हत्या करनेसे तुम्हें क्या मिला?

अट्ठाईसवां परिच्छेद

—×✻×—

मनोरमाके चले जानेपर पहले तो गोपीनाथको बहुत कष्ट हुआ। उसके बाद कष्ट क्रमशः क्रोधमे परिणत हो गया। दूसरे दिन उसने मनमें कहा---दूर हो मनोरमा! वह मेरी कौन होती है? कोई नहीं। डूबकर मरने जा रही थी। मैंने उसे आश्रय दिया, सुखसे रखा, पर वह ऐसी अकृतज्ञ निकली, कि उसने इसका जरा भी ख्याल नहीं किया, अन्तमें मेरा ही अविश्वास करके चली गयी। और मैं? मैं उसकी चिन्तामें बेचैन हो रहा हूं, संसार मेरे लिये सूना दिखाई दे रहा है। मनोरमा क्या है? कुछ भी नहीं—एक तुच्छ स्त्री। उसके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। उसकी बात मैं कभी न सोचूंगा।

गोपीनाथकी इच्छा हुई कि मनोरमाकी स्मृतिको हृदयसे निकाल कर छिन्न-भिन्न कर दे। मनोरमाके चले जानेपर जिससे मनको कुछ कष्ट न हो, उसने उस दिन अच्छी-अच्छी खानेकी चीजें बनायीं। उसे ऐसा मालूम होता था, जैसे मनोरमा उसके सामने खड़ी है और मनोरमासे वह उपेक्षासे कह रहा है—यह देखो मनोरमा, तुम्हारे चले जानेसे मुझे जरा भी कष्ट नहीं हो रहा है। देखो, मैं कितना प्रसन्न हूं।

किन्तु भोजन बना चुकनेके बाद जब वह खाने बैठा तो उसका सब उत्साह न जाने कहां लोप हो गया! मनोरमाके बनाये हुए भोजनकी याद आ गयी। खिलानेके लिये उसके आग्रह, अनुरोध,

आदर सबकी याद आने लगी । फिर गोपीनाथसे कुछ खाया नहीं गया । वह आंखोंसे आंसू बहाते हुए भोजनको रास्तेपर फेंक आया ।

चौथे दिन उसने सोचा—मनोरमाका क्या दोष है? मैं उसका कौन हूं जो वह मेरे पास रहे । हां, मैंने उसका कुछ उपकार किया है, पर वह तो मैंने अपनी इच्छासे किया है । उसने तो मुझसे उपकार करनेके लिये कहा नहीं था । और मैंने उपकार ही क्या किया है? मनोरमा ही क्यों, कोई भी होता तो यह उपकार किया जाता । छिः छिः इसी तुच्छ उपकारके लिये मनोरमासे प्रतिदानकी आशा करता हूं; उसपर क्रोधित हो रहा हूं, मैं कैसा बेवकूफ हूं ।

फिर दो तीन दिनके बाद सोचा—चलो, एक बार देख आयें, मनोरमा कैसी है? पर क्या कहकर उसके सामने जाकर खड़ा होऊंगा? जो मेरी उपेक्षा करके चली गयी; मेरा कुछ भी विश्वास नहीं किया, उसके सामने जाकर कहना होगा--मुंहसे नहीं, पर मन तो यही कहेगा कि मनोरमा, तुम मेरी उपेक्षा करके चली आयी हो, किन्तु मैं तुम्हें देखने आया हूं । तुमको देखे बिना नहीं रहा गया; इसी लिये आया हूं । छिः छिः कितनी लज्जा! कितना अपमान! यदि वह मुझसे पूछ बैठे कि क्यों आये हो? यदि वह मुझसे मुलाकात करना न चाहे? नहीं, वह अपमान, वह उपेक्षा, मैं सहन नहीं कर सकूंगा ।

पर गोपीनाथ इस संकल्पपर दृढ़ नहीं रह सका । दो ही दिन बाद उसने सोचा---उसको इस तरह भेजकर निश्चिन्त रहना उचित नहीं । वह सुखमें है या दुःखमें, एक बार इसकी खबर लेनी ही

चाहिये। उससे मुलाकात नहीं करूंगा, बाहरसे ही उसकी खबर लेकर चला आऊंगा। मैं उसे यह भी नहीं मालूम होने दूंगा कि मैं उसकी खबर लेने गया था।

उस दिन आफिससे पहले ही छुट्टी लेकर गोपीनाथ बिसेसरके घर पहुंचा। किन्तु वहां जाकर उसने जो देखा, उससे उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। देखा, बिसेसरके घरका दरवाजा बन्द था। उसपर एक कागज चिपका था, जिसपर लिखा था, यह भाड़े दिया जायेगा। गोपीनाथ कुछ देर तक मकानके आसपास घूमता रहा। पासके मकानवालेसे पूछा, किन्तु कुछ पता नहीं चला। अन्तमें उदास हो कर वह वहांसे लौट आया।

कुछ दूर आते ही हीरालाल दिखाई दिया। गोपीनाथने पहले हीरालालको बिसेसरके साथ देखा था और वह उसका नाम भी जानता था। अतः उसको देखकर गोपानाथ खड़ा हो गया, हीरालाल भी गोपीनाथको देखकर खड़ा हो गया। तब गोपीनाथने हीरालालके पास जाकर पूछा—महाशय, क्या आप बतला सकते हैं कि बिसेसर तिवारी जी कहां गये हैं?

हीरालालने कहा—हां, बतला सकता हूं, वह तीर्थ करने गये हैं।

गोपीनाथ—क्या परिवारके साथ?

हीरालाल—नहीं, अकेले।

गोपीनाथ—उनका परिवार कहां है?

हीरालाल—परिवारमें तो सिर्फ उनकी स्त्री है, वह शायद घर चली गयी है।

गोपीनाथने सकपकाते हुए पूछा—और मनोरमा ?

हीरालाल—मनोरमा मेरे घर है।

गोपीनाथ—मैं उससे एकबार भेंट करना चाहता हूं।

हीरालाल—तुम कौन हो ?

गोपीनाथ—मेरा नाम गोपीनाथ है।

हीरालाल—यह मुझे मालूम है, पर मनोरमाके साथ तुम्हारा क्या सम्पर्क है ?

गोपीनाथने कुछ आना-कानी करनेके बाद कहा—सम्पर्क ? कोई विशेष सम्पर्क नहीं है।

हीरा०—जब उसके साथ तुम्हारा कुछ सम्पर्क नहीं है, तब तुम उससे कैसे मिल सकते हो ?

यह कहकर हीरालाल चला गया। गोपीनाथ भी निराश होकर लौट आया।

उन्तीसवां परिच्छेद

हवड़ा स्टेशनपर बनारस एक्सप्रेस छूटना ही चाहती थी, उसी समय एक युवक तीसरे दर्जेके डब्बेमें चढ़ने लगा। उस डब्बेमें दो मुसाफिर थे। उनमें एक पुरुष था और एक स्त्री। उस युवकको गाड़ीमें चढ़ते देख भीतरसे मुसाफिरने कहा—इस गाड़ीमें जगह नहीं है, दूसरी गाड़ीमें जाओ।

युवकने मुसाफिरकी बात अनसुनी कर दरवाजा खोल दिया। मुसाफिरने बिगड़कर कहा—तुम अन्धे हो क्या? देखते नहीं, यह जनाना गाड़ी है?

युवकने गाड़ीके भीतर जाकर दरवाजा बन्द कर दिया और कहा—महाशय, यह जनाना गाड़ी कैसे है? आप तो औरत नहीं हैं? हैं! यह कौन—हीरालालजी!

हीरालाल उस युवककी धृष्टताका प्रतिफल देनेके लिये अपने कुरतेकी आस्तीन चढ़ा ही रहा था कि आगन्तुकके मुंहसे अपना नाम सुनकर उसने उसकी ओर देखा। देखकर वह अपनी जगहपर बैठ गया। युवक सामनेकी बेंचपर अवगुंठनवती स्त्रीको देखकर बेंचपर बैठ गया। अकस्मात् उस स्त्रीने मुंहपरसे घूंघट हटाकर बड़े कोमल स्वरमें कहा—गोपी भैया!

गोपीनाथने उसकी ओर रोषपूर्ण दृष्टिसे देखकर मुंह फेर लिया। उस समय गाड़ी चलने लगी थी। गोपीनाथ खिड़कीसे मुंह

निकालकर बाहरका दृश्य देखने लगा। हीरालाल एक सिगरेट जला कर पी रहा था।

जब गाड़ी श्रीरामपुर पहुंची, तब दो-तीन आदमी उस डब्बेमें चढ़ने लगे। गोपीनाथने उठकर दरवाजा बन्द कर दिया। किसीको चढ़ने नहीं दिया। गाड़ी छूटनेपर वह फिर अपनी जगहपर आकर बैठ गया।

उस स्त्रीने फिर एक बार कहा—गोपी भैया!

गोपीनाथने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह दांत पीसते हुए उसकी ओर देख रहा था। गाड़ी गरजती तपड़ती हुई पृथ्वीको कंपाती चली जा रही थी।

जब गाड़ी बर्दवान पहुंची, तब गोपीनाथ उतर पड़ा और पासके डब्बेमें जा बैठा। हीरालाल मुसकुराते हुए बेंचपर सो रहा। मनोरमा चुपचाप बैठी रही।

पासके डब्बेमें आकर गोपीनाथ स्थिर नहीं बैठ सका। गाड़ी खड़ी होते ही वह नीचे उतर पड़ता और घूमघूमकर मनोरमाके डब्बेकी ओर आंखें तरेरकर देखता। एक बार उसने देखा कि हीरालाल गुनगुनाकर गाना गा रहा है और मनोरमा खिड़कीसे मुंह निकालकर बाहरकी ओर देख रही है। गोपीनाथ जल्दीसे आकर अपने डब्बेमें बैठ गया।

फिर एक बार देखा कि हीरालाल खर्राटे ले रहा है और मनोरमा बैठी-बैठी ऊंघ रही है। उसका सारा शरीर सफेद कपड़ेसे ढका था। केवल मुखका कुछ हिस्सा बाहर दिखाई दे रहा था, बिजलीके

प्रकाशकी एक रेखा मुंहपर पड़ रही थी। गोपीनाथ पलकहीन नेत्रोंसे उसकी ओर देखता रहा। उसकी इच्छा हुई कि आदरसे पुकारें—मनोरमा! उसके बाद ही हीरालालकी नाककी आवाज उसके कानोंमें गयी। गोपीनाथ फिर अपने डब्बेमें जाकर बैठ गया।

एक छोटेसे स्टेशनपर जब गाड़ी पहुंची तो गोपीनाथने अपने डब्बेसे मुंह निकालकर देखा कि जिस गाड़ीमें मनोरमा बैठी है, उसमें दो तीन आदमी चढ़नेकी चेष्टा कर रहे हैं। गोपीनाथने जल्दीसे उतरकर गाड़ीका दरवाजा पकड़ लिया। उन मुसाफिरोंने भी गाड़ीमें चढ़नेका बहुत जोर मारा, गोपीनाथको दो-एक घूंसे भी जमाये, पर वह अटल पर्वतकी नाईं डटा रहा। उसने किसीको गाड़ीमें चढ़ने नहीं दिया। इतनेमें ही गाड़ी छूटनेकी घण्टी बजी। अन्तमें हार मानकर वे मुसाफिर दूसरे डब्बेकी खोजमें चले गये।

इस शोरगुलसे मनोरमाकी तन्द्रा टूट गयी थी, वह विस्मयपूर्ण दृष्टिसे गोपीनाथका वीरत्व देखने लगी। उसके बाद जब वे लोग हार कर चले गये, तब उसने बड़े शान्त स्वरमें पुकारा—गोपी भैया?

उस समय गाड़ी छूट गयी थी। गोपीनाथ चकित दृष्टिसे मनोरमाकी ओर देखकर अपने डब्बेकी ओर चला। एक रेल कर्मचारीने आकर उसका हाथ पकड़ लिया, गोपीनाथ उसे धक्का देकर गाड़ीमें चढ़ गया।

काशी पहुंचकर मनोरमाने चञ्चल दृष्टिसे चारों ओर देखा, पर गोपीनाथ कहीं नहीं दिखाई दिया।

तीसवां परिच्छेद

—०००० —

अकस्मात् जब मनमें वैराग्य उत्पन्न हो जाता है, तब मनमें भविष्यकी चिन्ता नहीं उठती। उस समय तो वर्तमान अवस्था-से किसी प्रकार पिंड छुड़ा ले सकनेमें ही जीवन निष्कण्टक होता दिखाई देता है, पर अन्तमें जब भविष्य वर्तमानका रूप धारण कर सामने उपस्थित हो जाता है, तब उसकी चिन्ता किये बिना आगे चलनेका उपाय नहीं सूझता, वरन् उस समय वही चिन्ता सबसे प्रबल हो अतीतकी ओर घुमाकर ले जानेके लिये आग्रह करने लगती है।

बिसेसर तिवारीकी भी इस समय यही दशा थी। जब वह वैराग्यके वशीभूत हो घर छोड़कर निकल पड़ा, तब उसने अपने-भविष्यके विषयमें कुछ भी न सोचा। जिसका जीवन ही उद्देश्य विहीन है उसे भविष्यकी क्या चिन्ता? जब जीवनमें सुख-दुःखमें कोई अन्तर नहीं रहता, तब भिक्षा मांगकर दिन काटे जा सकते हैं, बिना खाये भी काम चल सकता है।

अपने भविष्यके सम्बन्धमें इस प्रकार उदासीन होकर बिसेसर कई जगहोंकी खाक छाननेके बाद जब खाली हाथ काशी पहुंचा तो उसे अच्छी तरह मालूम हो गया कि बिना खाये एक दिन भी नहीं चल सकता और भिक्षावृत्ति द्वारा पेट पालना तो और भी कठिन

है। सड़कपर खड़े होकर जब उसने देखा कि एक पैसेके लिये भिखारी कितनी कातरता और दीनताके साथ लोगोंके पीछे हाथ फैलाये घूम रहे हैं, तब भिक्षावृत्ति द्वारा जीवन-यापन करनेकी कल्पनासे ही वह सिहर उठा।

उस समय भी संसारके प्रति उसकी विरक्ति गयी नहीं थी, अतः घर लौटनेकी उसकी इच्छा नहीं हुई। वहीं किसी प्रकार जीविका उपार्जन करनेका निश्चय कर लिया। पहले तो उसने नौकरीकी चेष्टा की, पर अपरिचित स्थानमें अपरिचित व्यक्तिको कौन नौकरी देता? और रोजगार करनेके लिये मूलधन चाहिये। एक पण्डेने उसे यात्री ले आनेके काममें रख लिया, पर एक ही दिन यह काम करके उसने इस्तीफा दे दिया। अन्तमें बहुत सोच-विचार कर उसने डाक्टरी करनेका विचार स्थिर किया।

पहले उसने डाक्टरी सीखनेकी गरजसे होमियोपैथिककी दो-एक पुस्तकें पढ़ी थीं। अब उस विषयकी दो-चार और पुस्तकें भी उसने खरीद लीं और तीन रुपयेमें कलकत्तेसे दवाओंका एक बक्स भी मंगवा लिया। उसके बाद दो रुपये मासपर एक कमरा भाड़े लेकर डाक्टरी करनी शुरू कर दी।

पहले पहल दो चार गरीबोंको मुफ्त दवा देकर बिसेसरने अपना विज्ञापन कर लिया। उस समय काशीमें उतने अधिक होमियोपैथिक डाक्टर न थे। थोड़े ही समयमें उसका छोटासा डाक्टरखाना कुर्सि और टेबुलोंसे भर गया। फिर तो बिसेसरने सात रुपयेमे सारा मकान ही किरायेपर ले लिया।

रोजगार चल निकला। रुपये भी खूब आने लगे, पर बिसेसरका मानसिक कष्ट कम नहीं हुआ। काम-काज समाप्त करके जब वह विश्राम लेना चाहता तब उसके अतीत कालकी चिन्ता एक प्रचण्ड दैत्यकी नाईं उसकी छातीपर आ बैठती। हजार चेष्टा करनेपर भी बिसेसर उसे अपनी छातीपरसे हटा नहीं सकता था। हाय! कैसा सुखमय उसका संसार था! उसका वह संसार, वह जीवन कहां गया! किस अपराधसे, किसकी भूलसे आज वह उस संसारसे निर्वासित है! किस देवताके अभिशापसे उसका पवित्र जीवन कलुषित हो गया है? किस पापके फलसे वह सुखके उच्चतम केन्द्रसे आज निर्वासित हो गया है?

बिसेसर सोचता—दूर हो मान, अभिमान, दूर हो गर्व अहंकार, चलो लौट चलें। पर कहां जाओगे? किसके पास जाओगे? सोचते सोचते बिसेसरका हृदय शोक और दुःखसे दग्ध होने लगता। संसार की सुखशान्ति उसके सामने आ-आकर उसका उपहास करने लगती।

उस दिन बिसेसर एक रोगी देखकर अपने घरके दरवाजेमें पैर रख रहा था, इसी समय एक आदमीने आकर उसका हाथ पकड़ लिया एवं उसके मुंहकी ओर देखकर व्यग्रतासे पूछा—क्या आप ही डाक्टर साहब हैं?

कुछ विस्मित होकर बिसेसरने कहा—हां, कहिये क्या काम है?

जरा चलकर देखिये, एक स्त्री मर रही है। यह कहकर वह आदमी बिसेसरका हाथ पकड़कर आगे बढ़ा। बिसेसरने पूछा—कहां चलना होगा?

आगन्तुकने कहा—अधिक दूर नहीं, इसी सामनेवाली गलीमें।

बिसेसर उस आदमीके साथ-साथ चला।

एक तंग गलीके भीतर एक छोटासा दुमंजिला मकान था। उसके नीचेवाले तल्लेमें एक कमरा था। कमरा जितना ही छोटा था उतना ही वह गन्दा और दुर्गन्धिपूर्ण था। उसमें रोशनी और हवा आनेके लिये एक ओर एक छोटासा झरोखा था। पर उसके सामने ही एक दूसरे मकानकी दीवार खड़ी थी, जिससे उस झरोखेका उद्देश्य पूरा नहीं होता था। उसी अन्धेरे कमरेमें एक चटाईपर एक स्त्री अचेत पड़ी थी। एक ओर एक ताखपर मिट्टीका एक दीया जल रहा था।

बिसेसर जाकर रोगिणीके पास खड़ा हो गया। वह आदमी दीयेको और करीब ले आया। उसकी रोशनीमें रोगिणीका मुंह देखकर बिसेसर दो कदम पीछे हटकर खड़ा हो गया। उसने विस्मय-से कहा—यह कौन? मनोरमा!

उस आदमीने तीक्ष्ण दृष्टिसे बिसेसरकी ओर देखा और कुछ रूखे स्वरमें कहा—हां, अभागिनी मनोरमा ही है, पर आप कौन हैं बिसेसर तिवारीजी!

बिसेसर—हां, मेरा नाम बिसेसर है। तुम कौन हो?

उस आदमीने दीयेकी बाती उसकाते हुए कहा—मेरा नाम गोपीनाथ है। फिर कुछ देर रुककर गोपीनाथने उत्कण्ठासे पूछा—देखिये, बचनेकी कुछ उम्मीद है?

बिसेसरने रोगिणीके पास बैठकर उसकी नाड़ी देखी। उसके बाद

गोपीनाथकी ओर देखकर—ज्वर बहुत अधिक है। नाड़ी भी ठीक नहीं है। कितने दिनोंसे इसे ज्वर हुआ है?

गोपीनाथने कहा—यह मैं नहीं जानता। मैंने तो इसे कल ही देखा है।

बिसेसर—कितने दिनसे यह यहां आयी है? किसके साथ आयी है?

गोपीनाथने कुछ बिगड़कर कहा—क्या आप यह सब कुछ भी नहीं जानते?

बिसे०—जानता तो तुमसे क्यों पूछता?

गोपी०—तुम्हारा परम मित्र हीरालाल इसे यहां ले आया था।

बिसेसर चुपचाप मनोरमाके मुखकी ओर देखता रहा। गोपीनाथने कहा—इस हतभागिनीको अपनी मूर्खताका उपयुक्त फल मिल गया। अब यह जिस तरह बचे वही उपाय कीजिये।

बिसेसरने कहा—मेरे चेष्टा करनेमें त्रुटि नहीं होगी।

गोपीनाथने उत्कण्ठित होकर कहा—तो क्या बचेगी नहीं?

बिसे०—बच सकती है, पर इस घरमें रहनेसे शायद ही बचे।

गोपी०—तब क्या होगा?

बिसे०—एक पालकी ले आओ।

गोपी०—पालकी किसलिये?

बिसे०—मैं इसे अपने घर ले जाऊंगा।

गोपीनाथ चुपचाप खड़ा रहा। बिसेसरने कहा—क्या सोच रहे हो?

बिसे०—आप इसे अपने घर ले जायेंगे ?

गोपी०—यदि इसे बचाना चाहते हो तो देर मत करो।

गोपीनाथ जल्दीसे बाहर चला गया।

रोगिणीने एक बार करवट बदलनेकी चेष्टा की। बिसेसरने किञ्चित् उच्च स्वरमें पुकारा—मनोरमा !

मनोरमाने आंखें खोलकर देखा और क्षीण अस्पष्ट स्वरमें कहा—पानी।

एक कोनेमें मिट्टीके घड़ेमें पानी रखा था। बिसेसरने एक पीतल-के गिलासमें जल ढालकर उसे पिलाया। जल पीकर मनोरमाने फिर आंखें बन्द कर लीं। बिसेसर चुपचाप उसकी ओर देखता हुआ सोच रहा था—हीरालाल इसे क्यों यहां लाया ? इस अभागिनीकी ऐसी दुर्गति क्यों की ? इसमें क्या रहस्य छिपा है ?

इतनेमें गोपीनाथ पालकी ले आया। बिसेसर गोपीनाथकी सहायतासे बड़ी सावधानीसे मनोरमाको पालकीमें चढ़ाकर अपने घर ले गया। वहां ले जाकर उसने एक अच्छे डाक्टरसे उसकी दवा-दारूका बन्दोबस्त करा दिया।

———

इकतीसवां परिच्छेद

—००*००—

चेत होनेपर मनोरमाने आंखें खोलीं। उसने देखा कि वह एक सजे हुए कमरेमें साफ-सुथरी चारपाईपर लेटी हुई है। वह कुछ भी न समझ सकी कि यह किसका घर है, मैं यहां कैसे आयी? उसने उठनेकी चेष्टा की, पर उठ न सकी। फिर उसने अवसन्न हो आंखें बन्द कर लीं।

बिसेसरने कहा—मनोरमा!

मनोरमाने आंखें खोलीं। बिसेसरने पूछा—मनोरमा! तुम मुझे नहीं पहचानती?

मनोरमाने क्षीण स्वरमें कहा—पहचानती हूं, तुम मेरे बिसेसर भैया हो।

प्रसन्न होकर बिसेसरने पूछा—अब तुम कैसी हो?

मनोरमा—अच्छी हूं! मुझे क्या हो गया था?

बिसेसर तुम्हें मोतीझरा ज्वर हो गया था।

मनोरमा आंखें बन्दकर कुछ सोचने लगी। उसके बाद उसने कहा यह कौन सी जगह है? मैं कहां हूं?

बिसे०—काशी। यह मेरा डाक्टरखाना है।

मनो०—मैं यहां कितने दिनोंसे हूं?

बिसे०—प्रायः एक महीनेसे।

मनोरमा लेटकर फिर सोचने लगी। बिसेसर उसे दवा पिलाकर चला गया। बहुत सोचनेके बाद मनोरमाको केवल इतना ही याद आया कि एक दिन रातको हीरालालके घरसे वह भाग आयी थी। इसके बाद क्या हुआ, उसे कुछ भी याद नहीं रहा।

शामको जब बिसेसर दवा पिलाने आया तो मनोरमाने कहा--अब दवा क्यों पिलाते हो, बिसेसर भैया?

बिसेसरने कहा---अब भी तुम्हारा रोग जड़से नहीं गया है।

मनोरमाने कहा--रोगका न जाना ही अच्छा है। तुमने इतना कष्ट उठाकर मुझे क्यों बचाया?

बिसेसरने कहा— बचाया है भगवानने। मैंने तो कुछ विशेष कष्ट नहीं किया है, कष्ट किया है एक दूसरे आदमीने।

मनोरमाने बड़ी उत्सुकतासे पूछा---वह कौन है?

बिसेसरने कहा---गोपीनाथ।

मनोरमाने उत्तेजित स्वरमें कहा—गोपी भैया! गोपी भैया! मेरे लिये इतना कष्ट किया है?

बिसेसरने कहा--हां, वही तुम्हें सड़कपरसे बेहोशीकी हालतमें उठाकर ले गया। उसके बाद कई दिनतक तुम्हारे पास बैठकर यमराजके साथ युद्ध करता रहा। यदि वह प्राणपणसे तुम्हारी सेवा शुश्रूषा न करता तो शायद तुम बच नहीं सकती थी।

एक क्षणके लिये मनोरमाके मुखमण्डलपर आनन्दकी बिजली दौड़ गयी। किन्तु थोड़ी ही देर बाद विषादके अन्धकारसे वह मलिन हो गया। मनोरमाने पूछा—गोपी भैया कहां हैं?

बिसेस्वरने कहा—कल तुमको अच्छी हालतमें देखकर वह अपने घर चला गया।

मनोरमा—तो क्या फिर वह यहां नहीं आयेंगे ?

बिसेसर—वह तो नित्य ही यहां आता है और तुम कैसी हो यह पूछकर चला जाता है। अभी थोड़ी ही देर पहले वह आया था।

मनोरमा—किन्तु वह मुझसे मिलना नहीं चाहते ?

बिसेसर—क्यों नहीं चाहते ?

मनो०—नहीं, वह मुझसे मिलना नहीं चाहते, वे मुझसे नाराज़ हैं, मुझ घृणा करते हैं।

बिसेसरने कहा—असम्भव ! यदि किसीके ऊपर कोई रंज हो अथवा उससे घृणा करे तो वह उसकी इस प्रकार सेवा नहीं कर सकता।

मनो०—केवल एक आदमी ऐसा कर सकता है। वह है गोपी भैया।

बिसेसर विस्मयसे मनोरमाके मुखको ओर देखता रहा। मनोरमाने कहा—एक बार—केवल एक बार मुझसे भेंट करनेके लिये उनसे कहो।

विसेसर मनोरमाकी बात मंजूर कर चला गया।

× × × ×

मनोरमा तकियेके सहारे बैठी थी। गोपीनाथ धीरेसे आकर उसकी चारपाईके पास खड़ा हो गया। मनोरमाने उसे देखकर कहा—कौन ? गोपी भैया ?

इकतीसवाँ परिच्छेद

गोपीनाथने अपनी छातीपर हाथ धरकर सिर नीचा किये कहा--मुझे किसलिये बुलाया है ?

मनो०—क्या तुम्हें बुलानेका मुझे अधिकार नहीं है ?

गोपी—मैं क्या जानूं ?

मनोरमाने कुछ रूखे स्वरमें कहा—यदि नहीं जानते हो तो मुझे बचानेके लिये प्राणपणसे चेष्टा क्यों की ?

गोपीनाथने इस बातका कोई उत्तर नहीं दिया। मनोरमाने फिर कोमल स्वरमें कहा—गोपी भैया ?

गोपीनाथने सिर उठाकर मनोरमाकी ओर देखा। और कुछ आंखें नीची कर लीं। मनोरमाने कहा—गोपी भैया, तुम मुझसे रंज हो ?

गोपीनाथने कहा—मेरे रंज होनेसे तुम्हारा क्या बिगड़ता है ?

मनो०—मैं बनने बिगड़नेकी बात नहीं कर रही हूं। मैं तो यही पूछती हूं कि तुम रंज हो या नहीं ?

गोपी०—रंज होनेके कारणसे ही लोग रंज होते हैं।

मनो०—बहुतेरे अकारण ही रंज होते हैं, जैसे तुम।

गोपीनाथने मनोरमाके मुस्कराते हुए मुखकी ओर देखकर विस्मयसे पूछा—अकारण ?

मनोरमाने मुस्कराते हुए कहा—हां, बिलकुल अकारण। अच्छा, यदि मैं फिरसे विवाह करना चाहती हूं तो इससे तुम्हारे रंज होनेका क्या कारण ?

भौंहें टेढ़ी कर गोपीनाथने कहा—शायद यही खुशखबरी सुनानेके लिये तुमने मुझे बुलाया है। पर यह सुननेकी मेरी इच्छा नहीं थी।

गोपीनाथ आगे बढ़ा। मनोरमाने कहा—ठहरो, जाओ मत। कुछ और बातें भी कहनी हैं।

गोपीनाथ खड़ा हो गया, कहा—और क्या बातें करनी हैं ?

मनोरमाने कहा—क्या तुम विश्वास करते हो ?

गोपी०—क्या ?

मनो०—कि मैं विवाह करूंगी ?

गोपीनाथने सिर हिलाकर उत्तेजित स्वरमें कहा—बिलकुल नहीं।

मनोरमाने मुस्कराते हुए कहा—विश्वास नहीं कर सकते ; पर अकारण ही रंज हो सकते हो। मेरे ऊपर तुम्हारा क्रोध इतना भयंकर था कि तुम मुझे बाघके मुंहमें डालकर चले आये। मैंने तुम्हारी सहायता मांगी, कातर स्वरमें तुम्हे पुकारा। पर मेरी आवाज तुम्हारे कानोंमें न गई। एक बार भी तुमने फिरकर मेरी ओर नहीं देखा। सहायताके लिये तुमने मुझे कुछ भी आश्वासन नहीं दिया। आज यदि मैं स्वयं अपने धर्मकी रक्षा नहीं करती, यदि भागकर अपनी लाज नहीं बचाती—

गोपीनाथ वहीं फर्शपर बैठ गया। दोनों हाथोंसे अपना मुंह ढककर उसने कहा—मुझे क्षमा करो मनोरमा।

मनोरमाने कहा—इतना कष्ट भोगनेपर सहज ही क्षमा नहीं की जा सकती। मैं तुम्हें क्षमा कर सकती हूं—

गोपीनाथने कहा—बोलो, मनोरमा, मुझे क्या करना होगा ?

मनोरमाने गम्भीर स्वरमें कहा—मुझे आश्रय देना होगा।

गोपीनाथ विस्मित हो सजल नेत्रोंसे मनोरमाके मुखकी ओर

देखा। मनोरमाने कहा—अब मैं फिर लौट आयी हूं गोपीनाथ भैया! एक दिन तुम्हें रुलाकर मैं गयी थी, आज मैं ही रोती हूं। तुम्हारे पास आयी हूं—बहिनका विश्वास और माताका स्नेह लेकर फिर तुम्हारे ही दरवाजेपर आयी हूं। गोपी भैया! क्या मुझे आश्रय दोगे?

गोपीनाथने जाकर मनोरमाका हाथ पकड़ा। आंसुओंकी धारासे उसके हाथको भिगोते हुए आवेग-कम्पित स्वरसें उसने कहा—चलो, बहिन, मैं संसारमें अकेला ही हूं। मेरी बहिन होकर मेरे घर चलो। मेरे चिर-शुष्क स्नेह-भिखारी हृदयको अपने स्नेहकी धारामें डुबा दो। मूर्ख गोपीनाथको अपने देवीत्वके आदर्शसे मनुष्य बना दो।

दरवाजेके सामने खड़ा होकर बिसेसर यह अपूर्व दृश्य देख रहा था। उसी समय उसने घरके अन्दर जाकर कहा—केवल गोपीनाथको क्षमा कर देनेसे काम नहीं चलेगा, मनोरमा मुझे भी क्षमा करना होगा। मुझसे भी एक बड़ी भूल हो गयी है।

मनोरमाने कहा—मनुष्य मात्रसे ही भूल होती है, बिसेसर भैया, पर अपनी भूलको बहुत कम आदमी सुधारते हैं। तुम्हारी भी एक साधारण-सी भूलका सुधार हो गया, यह मेरा सौभाग्य है।

बिसेसरने कहा—साधारण भूल नहीं मनोरमा? मेरी ही भूलसे तुम्हें इतना कष्ट भोगना पड़ा।

मनोरमाने मुस्कराकर कहा—मेरे दुर्भाग्यवश मुझे कष्ट भोगना पड़ा, किन्तु बिसेसर भैया—

बिसेसर—क्या मनोरमा?

मैनो०... तुमने जीवनमें जो सबसे बड़ी भूल की है, जिसके लिये अपना जीवन हा... के बैठे हो, क्या उसका सुधार नहीं होगा?

बिसेसरने एक लम्बी सांस ली। मनोरमाने कहा—कुछ चिन्ता मत करो बिसेसर भैया! तुम जहां अपनेको क्षमाके लिये अयोग्य समझते हो, तुम देखोगे वहां तुम्हारे लिये क्षमाका भण्डार खुला है। लौट जाओ बिसेसर भैया, एक मामूली-सी बातके लिये तीन आदमियोंके जीवनकी सुख-शान्तिको मत नष्ट करो।

बिसेसर खड़ा-खड़ा इस महिमामयी रमणीके मुखमण्डलपर आशाकी समुज्ज्वल आभाका विकास देख रहा था।
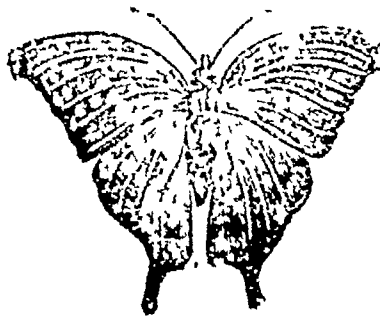
बत्तीसवां परिच्छेद

—— ०० ——

इधर शांता और दुलारीकी अवस्था दिन प्रति दिन खराब होती जा रही थी। घरमें आमदनी तो एक पैसेकी भी नहीं थी, खर्च ही खर्च था। दो पेटका खर्चा, तिसपर एक लड़का है, रोगोके दवा-दारू और पथ्य-पानीका खर्च अलग है, वैद्यने तो पहले अच्छी-अच्छी औषधियां दीं। उनसे रोग भी कुछ अच्छा हो चला, पर पीछे जब दवाके दाम बाकी पड़ने लगे तब उनकी औषधियोंका कुछ फल नहीं दिखाई दिया। दुलारीने एक दिन धनईसे पूछा—धनई! दवाका कुछ फल नहीं दिखाई देता। वैद्यजी क्या कहते हैं?

धनई ही वैद्यजीके यहांसे दवा ले आ देता। उसने सिर खुजलाते हुए कहा—वह क्या कहेंगे? बिना मोलकी दवाका क्या फल होगा, बहू?

दुलारीकी आंखोंमें आंसू भर आए।

दवाके दाम चाहिये पर आवे कहांसे? घरमें तो एक रत्ती सोना चांदी नहीं। शान्ताके दोनों कानोंके कर्णफूल भी बन्धक हैं। केवल बच्चेके पैरोंके कड़े रह गये हैं। उससे क्या होगा और फिर किस तरह बच्चेके पैरसे कड़े निकालें? दुलारीने अपने चारों ओर अगाध समुद्र देखा।

शांताने कहा--तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, अब मैं दवा नहीं खाऊंगी।

दुलारीने डांटकर कहा—क्यों नहीं खायेगी ?

शांता—मेरी इच्छा नहीं है।

दुलारी—दवा खानेकी इच्छा नहीं है तो क्या मेरा सिर खायेगी ?

शान्ता—बहिन, जो चाहे तुम कहो, पर अब मैं दवा नहीं खाऊंगी।

दुलारी—नहीं खाओगी तो रोग कैसे अच्छा होगा ?

शांता—नहीं अच्छा होगा तो क्या करूं ? सच कहता हूं बहिन, रोग अच्छा होनेकी मेरी जरा भी इच्छा नहीं है।

दुलारी—तो मेरे यहां मरने क्यों आई ?

शान्ता—तुम्हारी गोदमें सिर रखकर मरने आयी हूं। पर क्या मेरा ऐसा सौभाग्य होगा ?

क्रोधके मारे मुंह और आंखें लाल लाल करके दुलारीने कहा—अपने सौभाग्यको चूल्हेमें फेंक दो। अभागिन मुझे चबाने आयी है।

शांताने मुस्कराकर कहा—क्रोध मत करो बहिन, सच कहती हूं, मेरे मरनेमे ही भलाई है।

दुलारी—हां, तुम्हारे मरनेपर मुझे राज्य मिल जायगा।

शांता—राज्य चाहे न मिले, पर तुम सुखसे रहो बहिन, यही मेरी आन्तरिक इच्छा है। मैं सौगन्ध खाकर कहती हूं कि मेरे मरनेपर ही तुम उनके साथ—

शांताका मुंह बन्द कर उत्तेजित स्वरमें दुलारीने कहा—देखो, शांता, मुंह संभालकर बातें करो। एक तो योंही मेरे बदनमें आग

लगी हुई है; उसपर यदि तुम भी मुझे इस तरह जलाओगी तो सच कहती हूं गलेमें फांसी लगाकर मर जाऊंगी?

शान्ताने कहा---बहिन, क्या तुम पागल हो गयी हो, भला कहनेसे कोई मरता है?

आंचलसे आंसुओंको पोछते हुए दुलारीने कहा---कहनेसे कोई नहीं मरता है तो क्या मरूंगी, मरूंगी कहकर मुझे भय दिखाने आयी है? मरना लिखा होगा, मरोगी, बचना लिखा होगा तो बचोगी। मेरा इससे क्या बनता-बिगड़ता है?

शान्ताने मुस्कुराते हुए कहा—यदि तुम्हारा कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है तो तुम रोती क्यों हो बहिन?

क्रोधसे चिल्लाकर दुलारीने कहा—दूर हो अभागिन। मेरे सामनेसे चली जाओ। आखिर सौत ही हो न, मुझे जलाकर खाक कर दिया।

हंसते-हंसते शान्ता दुलारीके सामनेसे भाग गयी।

दुलारीने धनईकी मांको बुलाकर पूछा—धनईकी मां, इस गांवमें कोई रसोईदारिन नहीं रहती?

धनईकी मांने आश्चर्यसे कहा— बहू, यह तो एक मामूली गांव है। यहां कौन रसोईदारिन रखेगा?

दुलारीने कहा—अच्छा, कोई मजूरिनी रखेगा?

धनईकी मां—मजूरिन तो कितने रख सकते हैं। क्या काम है?

दुलारी—यही पूछती हूं, जरा पता लगाओ न कोई मजूरिनी रख सकता है?

धनईकी मां—क्यों नहीं पता लगाऊंगी ? पर किसके लिये यह काम चाहिये।

दुलारी—मेरे लिये।

धनईकी मां अवाक् होकर दुलारीके मुखकी ओर देखती रही। दुलारीने कहा—दूर हो। मेरी ओर क्या देख रही है।

धनईकी माने कहा—बहू, क्या तुम मजूरिनका काम करोगी ?

दुलारी—क्या मजूरिनका काम बुरा है ?

धनईकी मां—बुरा नहीं है, पर छोटा काम तो है।

दुलारी—अच्छा जो हो सो, तुम जाकर कहीं खोजो तो।

धनईकी मां—अच्छा, मान लो कि खोज लिया, पर तुम्हें रखेगा कौन ?

दुलारी—जिसे जरूरत होगी।

धनईकी मां—जिसे जरूरत होगी वह मेरी जैसी मजूरिन रखेगा, तुम्हें रखनेका साहस न होगा।

दुलारी—क्यों ?

धनईकी मां—तुम्हारी तनखाह उससे नहीं दी जा सकेगी।

दुलारी—मैं अधिक तनखाह नहीं चाहती।

धनईकी माने हंसकर कहा—अच्छा जाती हूं। लेकिन तुम मुझे क्या दोगी ?

दुलारी—तुम्हें क्या देना होगा ?

धनईकी मां—दलाली।

दुलारीने हंसकर कहा—अच्छा, देखा जायगा।

धनईकी मां -देखा जायगा नहीं, मुझे दलाली चाहिये ही।

धनईकी मां चली गयी।

शान्ताने आकर पूछा—किसकी दलाली, बहन!

दुलारी—दलाली कैसी? वह दिल्लगी कर रही थी।

शांता—दिल्लगी नहीं बहिन, मैंने सुना है तुम मजूरिनका काम करने जा रही हो।

दुलारीने मुंह चमकाकर कहा—हां, करूंगी। इसमें तुम्हारा क्या?

शांता—बहिन!

दुलारीने जोरसे चिल्लाकर कहा—देखो शान्ता, मेरे सामनेसे चली जाओ। मुझे जलाओ मत।

शांता डबडबायी आंखोंसे बहिनकी ओर देखती हुई चली गई। दुलारी खड़ी थी, बैठ गयी। उस समय उसकी छातीमें आग जल रही थी। हाय! उसे दूसरेके यहां दासी वृत्ति करनी पड़ी। किन्तु इसके सिवा और कोई उपाय नहीं। शांता और उसके बच्चेको बचानेकी ही उसको एकमात्र चिन्ता थी। कहां हो लौट आओ! मेरे लिये नहीं, शान्ताके लिये लौट आओ—इस दुधमुंहे अनाथ बच्चे के लिये लौट आओ। अपने झूठे गर्वके वश मैंने तुम्हें कई बार लौटा दिया, पर अब मैं तुम्हें नहीं लौटाऊंगी। मैं क्रोध, अभिमान, गर्व सबको त्याग कर तुम्हारे चरणोंमें लोट पड़ूंगी। तुम एक बार चले आओ।

शान्ता चारपाईपर लेटकर व्याकुल हो चिल्लाकर कहने लगी—

सर्व सन्तापविनाशिनी, दुखियाके सान्त्वनास्थल मृत्यु! तुम कहां हो? आओ, और आकर मेरी सब ज्वाला शान्त कर दो।

बच्चा सो रहा था। उसकी नींद टूट गयी। वह उठकर रोने लगा। शान्ताने उसकी ओर देखातक नहीं। दुलारीने घरमें आकर कहा—कानोंमें तेल डाल रखा है क्या? रोते-रोते बच्चेका दम फूल गया। जरा उठाती भी नहीं।

शान्ताने कुछ उत्तर नहीं दिया—उठी भी नहीं। करवट बदलकर सो रही।

* * * *

धनईकी मांने धनईको बुलाकर कहा—सुनते हो बेटा! बाभनी बर्तन-बासन मांजनेका काम करेगी।

धनईने कुछ विस्मित होकर मांसे पूछा—कौन बाभनी, अम्मा?

मांने कहा—और कौन? वही बिसेसर तिवारीकी बहू।

धनईने हंसकर कहा—चल, भला क्या यह कभी हो सकता है?

धनईकी मांने कहा—हां रे सच बात है।

धनई—सच बात है! तुम्हींसे सलाह की है क्या?

धनईकी मां—हां, उसीने तो मुझसे कहा है।

धनई—क्या कहा है?

धनईकी मां—कहा है, धनईकी मां, क्या मेरे लिये एक मजूरिनका काम तलाश कर सकती हो?

धनई—तुमने क्या कहा?

धनईकी मां—मैंने कहा, क्यों नहीं तलाश कर सकती हूं?

धनई—तो क्या तुम्हीं काम ठीक कर दोगी ?

धनईकी मां—क्यों नहीं ठीक कर दूंगी।

धनई—कहां ?

धनईकी मां—यमराजके घर।

धनईने सिर खुजलाते खुजलाते कहा—बांभनकी बेटीका मगज खराब हो गया है।

धनईकी मांने कहा-क्या करे ? क्या साधसे ऐसा करती है, घरका खरच चलाना मुश्किल हो गया है।

धनईने कहा—खरच नहीं चलनेसे क्या ऐसा भी काम किया जाता है ? लोग क्या कहेंगे ? और हमी लोग कैसे अपना मुंह दिखायेंगे ?

धनईकी मां—ठीक है, पर हम लोग करें क्या ? हमारा तो अपना ही खरच चलाना मुश्किल है।

धनई—तो भी किसी तरह काम चल ही जाता है। जो चलानेवाला है वही सब काम चलायेगा। जो कुछ खेतसे पैदा करता हूं, उसके आधेमें अपना खरच चलायेंगे, आधा बहूको दे आवेंगे।

धनईकी मां—जैसे हो कुछ उपाय तो करना ही होगा। पर इस तरह कितने दिन चलेगा ?

धनई—जितने दिन चल सके। फिर कोई और उपाय देखा जायगा।

तैंतीसवां परिच्छेद

दुलारी एक चिट्ठी लेकर हंसती हुई घरमें गयी। शान्ताने उत्कंठासे पूछा—किसकी चिट्ठी है बहन?

दुलारी—मेरी सखीकी चिट्ठी है।

शान्ताने विस्मयसे पूछा—तुम्हारी सखी क्या जीती है? कहां है? क्या लिखा है?

दुलारीने कहा—बारी बारीसे एक-एक बात पूछो। सखी अभी जीवित है। वह इस समय काशीमें है और लिखा है--

दुलारी शांताकी ओर एक मृदुल कटाक्ष पात कर हंसने लगी। शांता और अधिक उत्सुकतासे पूछने लगी--और क्या लिखा है?

दुलारीने कहा--अच्छा सुनो, क्या लिखा है। यह कहकर वह चिट्ठी पढ़ने लगी। शान्ता सांस रोककर उसे सुनने लगी।

मनोरमाने लिखा है---

सखि! मैं अब भी जी रही हूं। मौतको बहुत बार बुलाया, किन्तु मौत आयी नहीं। पास आ कर भी लौट गयी। इसीलिये अभीतक जीती हूं। पहले तो मुझे बहुत दुःख था, अब उतना दुःख नहीं है। मुझे एक भाई मिला है, जानती हो वह कौन है। वही गंजेड़ी गोपीनाथ। सखि, इतने दिनोंके बाद मालूम हुआ है गंजेड़ियोंमें भी भी देवतातुल्य मनुष्य रहते हैं और पढ़े-लिखे लोगोंमें भी राक्षस

रहते हैं। आजकल मैं काशीमें हूं। शीघ्र ही गोपी भैयाके साथ मथुरा आदि तीर्थोंकी यात्रा करने जाऊंगी। वहांसे लौट आकर उसका विवाह कराऊंगी किन्तु वह विवाह करना नहीं चाहता। पर मैं जोर देकर उसका विवाह कराऊंगी। उसने मेरे लिये कितना कष्ट उठाया है, वह मैं ही जानती हूं। तो मेरे लिये भी उसे सुखी रखनेके लिये चेष्टा करनी चाहिये। मैं जानती हूं, मेरे जोर देनेपर वह कभी इनकार नहीं कर सकेगा।

यहांतक तो मैंने अपनी ही बात कही। अब तुम्हारी बात लिखती हूं। बिसेसर भैयाकी बुद्धि ठिकाने आ गयी है। अब चाल ढाल भी बदल जायगी। पर देखो, इस बार अपने गर्वकी मात्रा कम कर देना। नहीं तो फिर बना बनाया काम बिगड़ जायगा। स्त्रियोंको कभी सीमाके बाहर नहीं जाना चाहिये। अब शायद तुम भी इस बातको अच्छी तरह समझ गयी होगी। इसलिये तुम्हें अधिक उपदेश देना व्यर्थ है। तुम्हारा जीवन सुखमय हो यही मेरी इच्छा है। अब तुम मुझे आशीर्वाद दो। मैं भी सुखसे इस संसारसे विदा लूं।

तुम्हारी सखी

—मनोरमा।"

दुलारीने लम्बी सांस ली। शान्ता आंखें बन्द कर पड़ रही।

सैंतीसवां परिच्छेद

शान्ता—बहिन, क्या यह सच है कि वे घर लौटे आ रहे हैं।

दुलारी—सखीने तो ऐसा ही लिखा है।

शान्ता—अच्छा, तुम क्या समझती हो?

दुलारी—पहले तो तुम बताओ, तुम्हारे मनमें क्या आता है।

कुछ देर चुप रहनेके बाद शांताने कहा—ना, तुम्हीं कहो।

दुलारीने मुस्कराते हुए कहा—मुझे तो ऐसा भान पड़ता है कि वे जरूर आयेंगे।

शान्ता—आकर वे मुझे देख सकेंगे?

दुलारीने शान्ताका सिर सहलाते हुए कहा—जब वह तुमको देखेंगे तो बड़े प्रसन्न होंगे। तुम्हारा बड़ा आदर करेंगे।

शंकित स्वरमें शांताने कहा—नहीं बहिन, वे प्रसन्न नहीं होंगे, रंज होंगे।

दुलारीने हंसकर कहा--दूर पगली।

शांताने कहा—सच कहती हूं बहिन, वे बड़े रंज होंगे।

दुलारी—हां, तुमसे कह गये हैं कि तुमसे रंज होंगे।

शान्ता--हां, वे अपने ही मुंहसे कह गये हैं कि मैं ही उनके सब कष्टोंकी जड़ हूं। मेरे जीते रहनेसे वे सुखी नहीं होंगे बहिन!

दुलारी—और तुम्हारे मरनेपर वे परम सुखी होंगे?

शान्ता--हां, बिलकुल ठीक।

दुलारी--ठीक नहीं तुम्हारा ख्याल। जो तुम्हारी जैसी स्त्रीको छोड़ दे, वह अभागा है।

शान्ता---ना, अत्यन्त भाग्यवान। बहिन, मेरे साथ विवाह करनेसे ही उन्हें इतना कष्ट भोगना पड़ा। उन्होंने अपने मुंहसे यह बात कही है।

दुलारीने हंसकर कहा--ओ! शायद इसीलिये तुम इतना रंज हो रही हो।

दुलारीके मुखकी ओर देखकर विस्मयसे शान्ताने कहा--मैं रंज क्यों होऊंगी बहिन!

दुलारी—रंज नहीं हुई हो तो मरना क्यों चाहती हो?

शान्ता—मैं जीती रहूंगी तो वे सुखी नहीं होंगे। मैं उनके योग्य स्त्री नहीं हूं।

दुलारी—यदि तुम अयोग्य स्त्री हो तो योग्य कौन है शान्ता?

शान्ता—तुम्हीं उनके योग्य हो? तुम अच्छी तरह जानती हो कि किससे वे सुखी और किससे दुखी होते हैं। मैं उनका स्वभाव बिलकुल नहीं जानती। इस बातको वह बराबर कहा करते थे। बहिन, आशीर्वाद दो कि उनके आनेके पहले ही यहांसे बिदा हो जाऊं।

दुलारीने मुंह फेर लिया। शान्ता जोर-जोरसे सांस लेने लगी।

कुछ देर बाद दुलारीने कहा—उनको देखनेकी तुम्हारी लालसा नहीं है?

आंखें खोलकर मुसकुराते हुए शान्ताने कहा—बड़ी लालसा है बहन, और लालसा है बच्चेको उनकी गोदमें देनेकी। पर मैं

अपनी छोटीको पूर्ण करना नहीं चाहती। तुम बच्चेको उनकी गोदमें देना, तभी मेरा जन्म सार्थक होगा।

बड़े कष्टसे आंसुओंको रोककर दुलारीने कहा—छिः शान्ता! क्या ऐसी भी बात कही जाती है? स्वामीको छोड़, बच्चेको छोड़ कर तुम कहां जाओगी? वहां जाकर सुख पाओगी?

शान्ता फिर हंसी, मानो काले बादलोंमें बिजली की क्षीण चमक दिखाई दी। हांफते हांफते उसने कहा—चाहे जहां मैं जाऊं, पर यदि मैं सुनूंगी कि वे सुखसे हैं तो मुझे भी बड़ा सुख मिलेगा। मुझे अपने सुख-दुखके लिये फिक्र नहीं है बहन!

दुलारी स्थिर दृष्टिसे शान्ताके शान्त प्रफुल्ल मुखकी ओर देख रही थी। मृत्यु आकर उसके मुखमंडलपर अपनी विकट छायाका विस्तार कर रही थी। पर तब भी वह प्रफुल्ल था। दुलारीकी आंखों- में आंसू भर आये। उसने रोते हुए कहा—शान्ता! तुम्हारे हृदयमें इतनी भक्ति, इतना प्रेम, इतना आत्मत्याग भरा है, तो मुझे केवल रुलानेके लिये ही क्यों आयी?

शान्ताने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसके मुरझाये हुए ओठोंपर हास्यकी क्षीण रेखा नाच रही थी।

हृदयकी धधकती दावाग्निको भीतर ही दबा कर बिसेसर अपने घरके द्वारपर आ खड़ा हुआ। रुद्ध—शंकित स्वरमें उसने पुकारा— दुलारी!

उद्वेलित कंठसे दुलारीने कहा—तुम आ गये?

बिसेसरने कहा—हां, आ गया—तुम लोगोंसे क्षमा मांगने।

दुलारी रोती हुई विसेसरके पैरोंपर गिर पड़ी। आंसुओंकी धारा-से स्वामीके दोनों चरणोंको धोते हुए उसने कहा—क्षमा, मुझ दासीको क्षमा करो ! अपने तुच्छ गर्वके वश मैं तुम्हें पहचान न सकी; पर शांता मेरी आंखें खोल कर चली गयी।

विसेसरने सशंकित होकर कहा—शान्ता चली गयी ?

दुलारीने कहा—हां, वह चली गयी। मेरे क्रोध, अभिमान, गर्वको अपने साथ ले, तुम्हारी अवज्ञा, आदर, घृणाको तुच्छ कर चिर सौभाग्यवतीकी नाईं वह हंसती-हंसती चली गई।

विसेसर वहीं बैठ गया—सिरपर हाथ रखकर रोने लगा।

दुलारीने अपनी आंखोंको पोंछते हुए स्वामीका हाथ पकड़कर कहा—छिः तुम रोते हो ! उठो ! घर चलो।

विसेसर चुपचाप बैठा था।

आंगनमें बच्चा खेल रहा था। दुलारीने उसे गोदमें उठाकर स्वामीकी गोदमें दिया। विसेसरने आंखें उठाकर दुलारीकी ओर देखा। दुलारीने कहा—शांताका दान।

विसेसरने बच्चेको लेकर छातीसे लगा लिया।

१० (ए)—मृणालिनी

ले० बाबू बङ्किमचन्द्र चटर्जी

यह बङ्किम बाबू लिखित बङ्गला उपन्यास मृणालिनीका हिन्दी अनुवाद है। इस पुस्तकमें यवनों द्वारा पददलित मगध राज्यके राजकुमारकी वीरता, तत्परता, देशप्रेम तथा उसकी स्त्री मृणालिनीका सतीत्व प्रेम, तथा पतिपरायणताका अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है। अनेकों चित्रोंसे सुशोभित पुस्तकका मूल्य केवल १) है।

११-कृष्णकान्तका वसीयतनामा

ले० बाबू बङ्किमचन्द्र चटर्जी

यह बङ्किम बाबू लिखित बङ्गला उपन्यास "कृष्णकान्तेर विल" का हिन्दी अनुवाद है। इसका विषय इतना रोचक और कौतूहलवर्द्धक है कि चित्तमें यह बात लहर मारने लगती है कि आगे क्या हुआ ? मनुष्य धनके लोभमें आकर प्राणोंकी बाजी लगाकर जघन्यसे जघन्य काम कर बैठता है और उसका कितना कुफल भोगता है, इसका एक बड़ा ज्वलन्त उदाहरण इसमें अङ्कित है। अनेकों चित्र दिये गये हैं। मूल्य १)

१२—सीताराम

ले० बंकिमचन्द्र चटर्जी

यह भी बङ्किम बाबूकी कलमकी एक करामात है। यह है तो उपन्यास मगर इसमें इतिहासका मजा आता है। मुगल बादशाहकी उद्दण्डता तथा काज़ियोंकी काली करतूतका दिग्दर्शन कराया गया है एक परोपकारी पुरुष किस प्रकार विपत्तियोंको झेलता हुआ ऊँचे दर्जेको पहुंच सकता है, और एक सच्ची हिन्दू-नारी किस प्रकार अपने पवित्र धर्मकी रक्षा करती, है यह सब आप इसमें देखेंगे। अनेकों रङ्गीन चित्रोंसे सुसज्जित पुस्तकका मूल्य १।)